ओ३म्

# गुरुकुल–पत्रिका


सम्पादक : रामप्रसाद वेदालङ्कार

आचार्य एवं उपकुलपति

सह सम्पादक : डॉ० सत्यव्रत राजेश

प्रवक्ता वेद विभाग,

प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री

प्रवक्ता संस्कृत विभाग

प्रकाशक : डॉ० गंभीरसिंह सैंगर (कुलसचिव)

ओ३म्

# गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक-पत्रिका]

मार्गशीष २०३६ वर्ष ३४ अङ्क-६
दिसम्बर १६८२ पूर्णाङ्क-३३६

## श्रुति सुधा

**आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।**
**न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ साम० १६७ ॥**

अन्वय :—सिन्धवः समुद्रम् इव इन्दवः त्वा आविशन्तु । इन्द्र ! त्वां न अतिरिच्यते ।

सं० अन्वयार्थ :—नदियां समुद्र में जैसे [प्रविष्ट हो जाती हैं] वैसे ही ये ज्ञानी पुरुष वा इन के भक्तिरूपी सोमरस तुझ में प्रविष्ट हों । तुझ से कोई बढ़कर नहीं ।

अन्वयार्थ :—(सिन्धवः समुद्रम् इव) सरिताएं जैसे दौड़ती हुई सागर में समा जाती हैं, वैसे ही (इन्दवः त्वा आविशन्तु) हे प्रभुवर ! ये ज्ञानी जन तुझ में प्रविष्ट हों । (इन्द्र ! त्वा न अतिरिच्यते) हे प्यारे परमेश्वर ! ज्ञान धन बल बुद्धि आदि में तुझ से बढ़कर कोई नही है ।

ये सरिताएं जैसे दौड़ती-भागती हुई समुद्र में घुस कर अपना नाम रूप खोकर तद्रूप हो जाती है, ठीक वैसे ही जिन्होंने भक्तिरूपी सोमरस से अपने हृदयों को आप्लावित कर लिया, ऐसे भक्तजनों को चाहिये कि वे तप स्वाध्याय और ध्यान भजन आदि के द्वारा बड़े उत्साह से-बड़ी उमंग से-बड़े ही वेग से निरन्तर आगे बढ़ते हुए उस प्रभु के प्रति आत्मसमर्पण करते हुए उस में ऐसे प्रविष्ट हो जाएं-उस में ऐसे खो जाएं कि फिर उन को अपना नाम-रूप भी स्मरण न रहे । तात्पर्य यह है कि वे ब्रह्म को पाकर ब्रह्म-रूप ही हो जाएं । अर्थात् फिर वे वही करें जो ब्रह्म करता है । जैसे ब्रह्म राग-द्वेष, स्वार्थ आदि से ऊपर उठकर सब का हित करता है वैसे ही वे भी किया करें । सचमुच उस इन्द्र से-उस परब्रह्म परमेश्वर से कोई और बढ़कर जानने और पाने योग्य नहीं है । उस का जानना और पा लेना मानो सब कुछ जान लेना और सब कुछ पा लेना है ।

# महापुरुषों के वचन—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ।। मनु० ४-१०-८ ।।

जल से शरीर के बाहर के अवयव, सत्याचरण से मन विद्या और तप अर्थात् सब प्रकार के कष्ट भी सह के धर्म के ही अनुष्ठान करने से जीवात्मा, ज्ञान अर्थात् पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के विवेक से बुद्धि दृढ़ निश्चय पवित्र होता है । (सत्यार्थ प्रकाश)

**सन्ध्योपासन जप—ध्यान—**

सन्ध्योपासना एकान्त देश में एकाग्रचित्त से करें ।

जङ्गल में अर्थात् एकान्त देश में जा, सावधान हो के, जल के समीप स्थित हो के नित्य कर्म को करता हुआ सावित्री अर्थात् गायत्री मन्त्र का उच्चारण, अर्थज्ञान और उस के अनुसार अपने चाल चलन को करे, परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है ।

सन्ध्या और अग्निहोत्र सायं प्रातः दो ही काल में करे । दो ही रात दिन की सन्धिवेला है, अन्य नहीं । न्यून से न्यून एक घण्टा ध्यान अवश्य करे । जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं वैसे ही सन्ध्योपासना भी किया करें ।

अग्नि होत्र—सर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व अग्निहोत्र करने का समय है ।

(सत्यार्थ प्रकाश)

यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः ।
तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया ।। वि० नी० २.१७ ।।

जैसे भ्रमर पुष्पों को बचाता [हानि न पहुँचाता] हुआ मधु ले लेता है, ऐसे ही क्लेश दिये बिना राजा मनुष्यों से धन लेवे ।

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः ।। वि० नी० २-२२ ।।

जिस की कृपा निष्फल हो तथा जिस का क्रोध निरर्थक हो, प्रजाएं उस राजा को नहीं चाहतीं, जिस प्रकार स्त्रियां नपुंसक पति को नहीं चाहतीं ।

कौन शान्ति को प्राप्त करता है—

विहाय कामान्यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ।। गीता २-७१ ।।

जो मनुष्य इन सब कामनाओ को छोड़ कर स्पृहारहित, ममता रहित, तथा अहंकार रहित हो कर विचारता है, वही शान्ति पाता है।

किस की प्रज्ञा प्रतिष्ठित रहती है—

**तस्माद् यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।**
**इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।। गीता २-६८ ।।**

हे महाबाहो ! इसीलिये जिसकी इन्द्रियां, इन्द्रियों के अभिलषित विषयों से हटाकर अपने वश में कर ली गई हैं, उसी की प्रज्ञा प्रतिष्ठित है।

**सर्ववेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।**
**यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ।। कठोपनिषद् ।।**

जिस शब्द का सब वेद बार-बार वर्णन करते है, सब तप जिस को पुकारते है, जिस की चाहना में ब्रह्मचर्य का आचरण करते है, संक्षेप में वह शब्द हे नचिकेता तुझे बतलाता हूँ—वह शब्द 'ओ३म्' यह है।

**एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्याक्षरं परम् ।**
एतद्ध्याक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्म तत् ।। कठोपनिषद् ।।

"यही अक्षर-अविनाशी 'ओ३म्' ही ब्रह्म है, यही सब से परम है, इसी अविनाशी अक्षर को जानकर जो कोई जो कुछ चाहता है उसे वह प्राप्त हो जाता है।"

**एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।**
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ।। कठोपनिषद् ।।

यह सर्वश्रेष्ठ सहारा है, यही परम सहारा है। इस सहारे को जानकर ब्रह्मलोक में मनुष्य महिमा को पा लेता है।

# महापुरुष चरितम्—

## महात्मा गांधी—

हाईस्कूल के पहले ही साल की, परीक्षा काल की एक घटना उल्लेखनीय है। शिक्षा विभाग के इन्सपेक्टर जाइल्स स्कूल के मुआइने के लिये आए थे। उन्होंने पहले दर्जे के लड़कों को पांच शब्द लिखाये। उनमें एक शब्द 'केटल' (Kettle) था। उसके हिज्जे मैंने गलत लिखे। मास्टर ने मुझे अपने बूट की नोक से चेताया, पर मैं क्यों चेतने लगा! मैं यह सोच भी न सका कि मास्टर मुझे सामने के लड़के की सलेट देखकर हिज्जे दुरुस्त कर लेने का इशारा कर रहे हैं। मैं ने तो यह मान रखा था कि मास्टर वहाँ इसलिये तैनात है कि हम एक दूसरे की नकल न कर सकें। सब लड़कों के पाँचों शब्द सही निकले, अकेला मैं बेवकूफ बना। मेरी 'मूर्खता' मास्टर ने मुझे बाद में बतलाई, पर मेरे मन पर उसका कोई असर न हुआ। मुझे दूसरे लड़कों की नकल करना कभी न आया।

इतने पर भी मास्टर के प्रति मेरा आदर कभी घटा नहीं। बड़ों के दोष न देखने का गुण मुझ में स्वाभाविक था। इन मास्टर के अन्य दोष भी मुझे बाद को मालूम हुए, फिर भी उनके प्रति मेरा आदर ज्यों का त्यों बना रहा। (आत्मकथा; महात्मा गांधी से गृहीत)

## श्याम जी कृष्ण वर्मा—

श्याम जी कृष्ण वर्मा भले ही अपनी आँखों के सामने देश को स्वतन्त्र न देख सके, परन्तु हमें जो आजादी मिली है, उसमें श्याम जी कृष्ण वर्मा का बहुत बड़ा हाथ था। उन्हें क्रान्तिकारियों के अग्रदूत कहें तो अनुचित न होगा। इग्लैण्ड स्थित 'इण्डिया हाऊस' श्याम जी कृष्ण वर्मा का महान् कीर्ति स्मारक है। अब इस की व्यवस्था भारत सरकार कर रही है। भारतीयों के लिये यह पवित्र स्मारक 'तीर्थ स्थान' बन गया है।

लगातार ३० वर्ष तक विदेशों में रहकर हिन्दुस्तान को आजादी दिलाने का जो कार्य श्याम जी कृष्ण वर्मा ने किया है—वह भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायेगा। उन का तप और त्याग भावी सन्तति के लिये प्रेरणा का स्रोत है। और उन का जीवन अत्यन्त पुरुषार्थ और कर्तव्य परायणता की साक्षात् मूर्ति थी।

## पंजाब केसरी लाला लाजपत राय—

मैं नहीं भूल सकूंगा उस प्यार को जो पहली बार १८८२ में लाहौर आर्यसमाज के उत्सव पर जाने पर मेरे साथ स्वर्गीय लाला साईं दास जी ने किया। मुझे पकड़ लिया और अलग लेजाकर कहने लगे कि हमने बहुत समय प्रतीक्षा की है। अब तुम हमारे साथ मिल जाओ। वे मेरे साथ बातें कर रहे थे और मेरे मुंह की ओर देखते और पीठ पर प्यार का हाथ फेरते जा रहे थे। मैं ने "हाँ" किया, उन्होंने प्रवेश फार्म मंगा लिया, मैंने कुछ सोचा। वह हंसने लगे और कहा कि तुम्हारे हस्ताक्षर लिये बिना तुम्हें नहीं जाने दूंगा। मैंने हस्ताक्षर कर दिये। उस समय उन के मुख पर जो झलक प्रसन्नता की दिखाई दी उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। ऐसा प्रतीत होता था कि उनको हिन्दुस्तान की बादशाहत मिल गई हो।"

गतांक से आगे—

# राम साहित्य की व्यापकता—

डॉ० राकेश शास्त्री, संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)

२—सत्योपाख्यान—

इसमे बाल्मीकि तथा मार्कण्डेय दोनो का संवाद है। इसकी रचना अध्यात्म रामायण के बहुत बाद हुई है।

३—धर्मखण्ड—

यह स्कन्द पुराण का एक अंश तथा तत्त्व संग्रह रामायण का मुख्य आधार माना जाता है। इस रामकथा में शिव का विशेष महत्त्व दिया गया है। शिव और राम की अभिन्नता का संकेत स्थान-स्थान पर मिलता है।

४—हनुमत्संहिता—

हनुमत्संहिता में अगस्त्य हनुमान संवाद के रूप में राम की रासलीला तथा जल-विहार का वर्णन तीन सौ साठ श्लोकों में विस्तार से किया गया है।

५—वृहत्कौशल खण्ड—

यह रामकथा राम की रासलीला से ही भरी हुई है। इसमे कृष्ण की रासलीला का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

संस्कृत ललित साहित्य में रामकथा—

संस्कृत के ललित साहित्य में रामकथा सम्बन्धी कथानक में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं पाया जाता। संस्कृत में महाकाव्य, खण्डकाव्य, स्फुट काव्य नाटक तथा कथा साहित्य में रामकथा की अभिव्यक्ति काव्यात्मक रूप में हुई है।

**महाकाव्य**—रामकथा से सम्बन्ध निम्नलिखित महाकाव्यों की रचना हुई है—

**१—रघुवंश**—बाल्मीकीय रामायण जब अपना वर्तमान रूप धारण कर चुका था उसके पश्चात् रघुवंश की रचना हुई। रघुवंश में नवे सर्ग से कथा का आरम्भ होता है। यह समस्त कथा बाल्मीकि कृत रामायण पर आधारित है।

**२—रावण वध अथवा सेतुबन्ध**—महाराष्ट्री प्राकृत की इस महाकाव्य के

रचयिता राजा प्रवरसेन माने जाते है । रावणवध के १५ सर्गों में युद्धकाण्ड तक की रामकथा आयी है । राम-रावण युद्ध के प्रसंग का बड़े विस्तृत रूप तथा अलंकृत शैली मे वर्णन किया गया है ।

**३—भट्टिकाव्य अथवा रावणवध**—इस महाकाव्य के बाइस सर्गों में युद्ध काण्ड तक की रामकथा आयी है । भट्टिकाव्य में दशरथ के शैव होने का उल्लेख आया है ।

**४—जानकीहरण**—कुमारदास द्वारा रचित जानकीहरण की रामकथा भी युद्धकाण्ड तक की है । बाल्मीकीय रामायण से इस रामकथा में भिन्नता नही के बराबर है । इस रामकथा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि २५ सर्गो के इस महाकाव्य ने शृंगारात्मक वर्णन पर्याप्त मात्रा मे आया है ।

**५—रामचरित**—अभिनन्द द्वारा रचित ३६ सर्गो वाले इस महाकाव्य में बनवास से लेकर युद्धकाण्ड तक की रामकथा आयी है ।

**६—रामायण मंजरी**—कश्मीर निवासी क्षेमेन्द्र ने बाल्मीकिकृत रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ का ५३८६ श्लोकों में रामायण मंजरी के रूप में संक्षेप प्रस्तुत किया ।

**७—दशावतार चरित**—क्षेमेन्द्र द्वारा ही रचित इस महाकाव्य मे अन्य अवतारों के साथ राम की भी कथा आयी है ।

**८—उदार राघव**—साकल्यमल्ल के इस महाकाव्य के अठारह सर्गों मे से केवल नौ सर्ग उपलब्ध है । जिनमे शूर्पणखा विरूपण तक की कथा आयी है । कथा रामायण से मिलती-जुलती है । यह सारी रचना कृत्रिम है ।

**९—राघवोल्लास**—इस महाकाव्य की रचना सम्भवत. रामलिंगामृतकार अद्वैत कवि ने की है । इसके प्रारम्भ के तीन सर्ग अनुपलब्ध है । शेष नौ सर्गों में लगभग एक हजार छन्द है ।

**१०—राम रहस्य अथवा रामचरित**—मोहन स्वामी कृत इस महाकाव्य में सूर्यवंश वर्णन से लेकर रामचन्द्र के स्वर्गारोहण तक की रामकथा मे मौलिकता लेशमात्र नही है ।

इन उल्लिखित रामकथा सम्बन्धी संस्कृत महाकाव्यो के अतिरिक्त कई महाकाव्यो का उल्लेख मिलता है । डॉ० कामिल बुल्के लिखते हैं कि इन महाकाव्यो का कथानक की दृष्टि से कोई महत्त्व प्रतीत नही होता है ।

**ये महाकाव्य इस प्रकार है—**

अभिनव भट्टवाण कृत रघुनाथ चरित
रघुनाथ उपाध्याय कृत राम विजय
रघुवीर चरित (रचयिता अज्ञात)

चक्रकविकृत जानकी परिणय

**स्फुट काव्य--**

रामकथा से सम्बन्धित कुछ स्फुट काव्य इस प्रकार है--

१—सन्ध्याकरनन्दी रचित रामचरित

२—कविराज माधव भट्ट रचित राघवपाण्डवीय

३—हरिदत्त सूरिकृत राघवनैषधीय

४—चिदम्बर कृत राघवपाण्डवयादवीय

५—गंगाधर महाडकर रचित संकट नाशस्तोत्र

**नीति काव्य—**

१—सन्नीति रामायण—इसके प्रत्येक श्लोक का पूर्वार्द्ध नीति शिक्षा से सम्बन्धित है तथा उत्तरार्ध रामकथा से सम्बन्धित है।

**विलोमकाव्य--**

रामकथा से सम्बद्ध कुछ विलोम काव्य इस प्रकार है—

१—सूर्यदेव रचित रामकृष्ण विलोम काव्य

२—वेकटध्वारिन् कृत यादवराघवीय

३—यादवराघवीय

**चित्रकाव्य--**

रामकथा से सम्बद्ध दो चित्रकाव्य उपलब्ध हैं—

१—कृष्णमोहन रचित रामलीलामृत

२—वेकटध्वारिन् कृत यादवराघवीय

**शृंगारिक खण्डकाव्य--**

डॉ० कामिल बुल्के ने शृंगरिक खण्डकाव्यों को दो परम्पराओ में विभक्त किया है। उनके अनुसार शृंगारिक खण्ड काव्यों की सृष्टि विशेष कर मेघदूत तथा गीत गोविन्द के अनुकरण पर हुई है। मेघदूत के अनुकरण पर रचित शृंगारिक खण्डकाव्य मेघदूत के अनुकरण पर रचित

**शृंगारिक खण्डकाव्य निम्न हैं—**

१—वेदान्तचार्य द्वारा रचित हंस सन्देश अथवा हंसदूत

२—रूद्र वाचस्पति कृत भ्रमरदूत

३—वेकटाचार्य कृत कोकिल

४—कपिदूत

४—कृष्णचन्द्र तर्कालङ्कार रचित चन्द्रदूत

**गीत गोविन्द के अनुकरण पर रचित शृंगार काव्य—**

अनुकरण पर रचे गये शृंगार काव्य निम्न हैं—

१—रामगीत गोविन्द

२—गीतराघव

३—जानकी गीता

४—संगीत रघुनन्दन

उल्लिखित स्फुटकाव्यों के अतिरिक्त अनेक रचनाओं का उल्लेख यहाँ वहाँ मिलता है। इनमें रामकथा की दृष्टि से कोई उल्लेखनीय सामग्री नहीं मिलती इतना इससे अवश्य है कि रामकथा की लोकप्रियता तथा साहित्य में व्यापकता का प्रमाण मिल जाता है।

कुछ स्फुट काव्य इस प्रकार हैं—

विश्वनाथकृत राघवविलास

सोमेश्वरकृत रामशतक।

मुद्गलभट्टकत रामायशितक।

कृष्णेन्द्रकृत आयरिमायण। आदि।

**नाटक—**

संस्कृत का नाटक-साहित्य अत्यन्त प्राचीन तथा समृद्ध रहा है। उपजीव्य आदि महाकाव्य रामायण की रामकथा से साहित्य का कोई अंग छूटा नहीं है। रामकथा को लेकर नाटकों के अभिनय की परम्परा बहुत प्राचीन है। तथापि तदनन्तर रचित रामकथा से सम्बद्ध अनेक नाटक आज उपलब्ध है। इन नाटकों का राम-कथा परम्परा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

१—प्रतिमानाटक—भास रचित प्रतिमानाटक के सात अङ्कों में वाल्मीकीय अयोध्याकाण्ड की कथावस्तु तथा सीताहरण का वर्णन किया गया है।

२—अभिषेक नाटक—भास द्वारा रचित इस नाटक में बालिवध से लेकर राम-राज्याभिषेक तक की रामकथा बहुत कम परिवर्तन के साथ आयी है।

३—महावीर चरित—भवभूति द्वारा रचित इस नाटक में राम-सीता विवाह से लेकर राम-राज्याभिषेक तक की कथा अङ्कों में वर्णित है। रामकथा की दृष्टि से इसमें कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हैं।

४—उत्तरराम चरितम्—इस करुण रस प्रधान नाटक में भवभूति ने वाल्मीकीय उत्तरकाण्ड की रामकथा को एक नये रूप में प्रस्तुत किया है।

५—उदात्तराघव—अनंगहर्ष मायुराज की इस रचना के छह अङ्कों में राम के वन-गमन से लेकर अयोध्या प्रत्यागमन तक की रामकथा आयी है।

६—कुन्दमाला—दिङ्नाग द्वारा रचित कुन्दमाला की कथावस्तु पर भवभूति के उत्तराम चरित का प्रभाव सुस्पष्ट है।

७—अनर्घराघव—मुरारि की इस रचना में रामकथा विश्वामित्र के आगमन से लेकर राम के अयोध्या प्रत्यागमन तथा अभिषेक की आयी है।

८—बाल रामायण—राजशेखर ने दस अंकों वाले इस नाटक में सीता स्वयंवर से लेकर रामाभिषेक तक की कथा भवभूति तथा मुरारि के अनुकरण पर वर्णित है।

९—हनुमन्नाटक अथवा महानाटक—चौदह अंकों वाले नाटक को लेकर विद्वानों में सर्वाधिक वाद-विवाद है।

१०—आश्चर्य चूड़ामणि—इस नाटक में शूर्पणखा के आगमन से लेकर सीता की अग्नि-परीक्षा तक की रामकथा सात अंकों में आयी है।

११—प्रसन्न राघव—जयदेव द्वारा रचित इस नाटक में सीता स्वयंवर से लेकर राम के द्वारा रावण वध के पश्चात् अयोध्या-प्रत्यागमन तक की कथा सात अंकों में वर्णित है।

१२—उल्लासराघव—सोमेश्वर कृत इस नाटक में बालकाण्ड के अन्त से लेकर युद्ध काण्ड के अन्त तक की रामकथा का वर्णन आया है।

१३—अद्भुत् दर्पण—दक्षिण भारतीय महादेव के इस नाटक में राम को एक एन्द्रजालिक दर्पण द्वारा लंका की घटनाएं दिखलाये जाने का वर्णन है।

१४—जानकी-परिणय—इस नाटक के रचयिता दक्षिण भारतीय रामभद्र दीक्षित है। जानकी परिणय के इतने पात्र एक दूसरे का रूप धारण कर लेते हैं कि सम्पूर्ण नाटक हास्य प्रधान बन गया है।

## अप्राप्य प्राचीन नाटक—

डॉ० कामिल बुल्के तथा डॉ० व्ही० राघवन ने कुछ अप्राप्य प्राचीन राम सम्बन्धी नाटकों के विषय में सामग्री एकत्रित की है। ये नाटक निम्नानुसार है—

राघवानन्द
मायापुष्पक
स्वप्नदशानन
क्षीर स्वामीकृत अभिनवराघव
कृत्यारावण
रामचन्द्रकृत रघुविलास तथा राघाभ्युदय
यशोवर्मनकृत रामाभ्युदय
रामानन्द
छलितराम

## कथा—

साहित्य के अतिरिक्त रामकथा संस्कृत कथा साहित्य में भी आयी है परन्तु उसकी कोई विस्तृत परम्परा नहीं पायी जाती। संस्कृत कथा-साहित्य की सबसे प्राचीन रचना गुणाढ्यकृत वृहत्कथा में राम-कथा वर्णित हुई।

**कथासरित्सागर—**

सोमदेव की इस रचना में तीन बार रामकथा आयी है।

**चम्पू—**

पन्द्रहवी शताब्दी के बाद रामकथा से सम्बन्धित विस्तृत चंपू-साहित्य की सृष्टि हुई है, परन्तु सब अप्रकाशित हैं।

**गद्य—**

वासुदेवकृत रामकथा सत्रहवी शताब्दी ई० के उत्तरार्द्ध की गद्य रचना है। इसमें बाल्मीकीय छह काण्डों की संक्षिप्त कथा है। अनन्तभट्ट कृत एक अन्य रामकथा सम्बन्धी गद्य रचना रामकल्पद्रुम के नाम का उल्लेख मिलता है। आधुनिक भारतीय भाषाओं में रामकथा।

विविध भाषा, धर्म, जाति सम्प्रदाय तथा प्रान्तों वाले भारतवर्ष की साँस्कृतिक एकता का प्रबल सूत्र रामकथा रही है, यह निर्विवाद सत्य है। भारत की आधुनिक भाषाओ के साहित्य में भी रामकथा की व्याप्ति अद्वितीय है। डॉ० कामिल बुल्के लिखते हैं कि सब (आधुनिक भारतीय) भाषाओ का सर्वप्रथम महाकाव्य प्राय कोई रामायण है तथा बाद की बहुत सी रचनाओं की कथावस्तु भी रामकथा से सम्बन्ध रखती है।

## द्रविड भाषाओं में रामकथा—

अ-तमिल रामकथा—द्रविड भाषाओं मे तमिल भाषा का साहित्य प्राचीन है। तमिल का रामकथा सम्बन्धी सबसे प्राचीन ग्रन्थ बारहवी शताब्दी ई० का कम्बनकृत रामायण है। कम्बन के समकालीन ओट्टक्कूत्तर के अतिरिक्त एक अज्ञात कवि ने तक्कै रामायण की रचना की है। दूसरे एक अज्ञात कवि ने रामायण तिरुप्पुरल की तथा अरुण गिरिनादर ने रामकथा पर रामनाडहम् नामक नाटक भी लिखा है।

## (आ) तेलुगु रामकथा—

तेलुगु में उपलब्ध रामकथा साहित्य कई श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। लघुगीत, लोकगीत शतक, महाकाव्य तथा नाटक आदि साहित्य के प्रत्येक अगोपांग में राम-कथा वर्णित है। श्री बालशौरि रेड्डी ने कुछ काव्यों के नाम इस प्रकार गिनाये हैं—

१ द्विपद रामायण या रंगनाथ रामायण
२ निर्वचनोत्तर रामायण विक्कना
३ भास्कर रामायण
४ मोल्ल रामायण
५ रामायणमु
६ गोपीनाथ रामायणमु
७ अध्यात्म रामायणमु
८ सम्पूर्ण रामायणमु
९ शतकण्ठ रामायणमु
१० मोक्षगुण्डरामायणमु

| | |
|---|---|
| ११ उत्तररामायणमु | १२ बाल्मीकि रामायणमु (अनुवाद) |
| १३ श्रीमद्राणमायणु | १४ मानुकोड रामायणमु |
| १५ उत्तरराम चरितमु | १६ रामायण कल्पतरु |
| १७ दोड्डुरामायणमु | १८ कंबरामायणमु |
| १९ बालरामायणमु | २० विचित्र रामायणमु |

तेलुगु में रामकथा विषयक कुछ नाटक भी विशेष उल्लेखनीय हैं जैसे—रामचरित, अनर्घराघवमु, अभिषेकनाटक, संतवेलरू रामनाटक, प्रतिमानाटक आदि। तेलुगु मे रामकथा विषयक कुछ प्रमुख शतक इस प्रकार है—

१—दाशरथु शतकमु
२—रामलिंगेश शतक
३—जानकीपति शतक
४—रामशतक
५—रघुनायक शतक तथा रामशतक
६—प्रसन्न राघवशतक
७—कोदण्डरामशतक

(इ) कन्नड रामकथा—

कन्नड का रामायण की दृष्टि से केवल तोरवे रामायण ही महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त एक अत्याधुनिक रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थ रामायण दर्शन विशेष उल्लेखनीय है। इसके रचयिता प्रोफेसर कुप्पल्लि वेंकटप्प गौड पुटप्प हैं।

(ई) मलयालम रामकथा—

मलयालम रामकथा साहित्य अल्प प्रमाण में है। रामकथा सम्बन्धी निम्न रचनाओं का उल्लेख मिलता है—

| | |
|---|---|
| १ रामचरितम् | २ रामकथाप्पाट्टु |
| ३ कण्णश्श रामायण | ४ रामायण चपू |
| ५ अध्यात्म रामायण | ६ केरल वर्मा रामायण |

(उ) आदिवासी रामकथाएं—

आदिवासी साहित्य कहीं सुरक्षित उपलब्ध नहीं होता। केवल राम सम्बन्धी कुछ दन्त कथाओं का वर्णन मिलता है। डॉ० कामिल बुल्के ने बाल्मीकीय रामायण के वानर, ऋक्ष, राक्षस आदि वास्तव में आदिवासी ही है, यह बतलाने का प्रयास किया है।

## हिन्दी में रामकथा—

हिन्दी में लिखे गये रामकथा सम्बन्धी साहित्य का विवेचन तुलसीदास को मध्यवर्ती रखकर किया जा सकता है। तुलसीदास पूर्व हिन्दी रामकथा साहित्य अधिक विस्तृत नही है तथा तुलसीदासोत्तर हिन्दी रामकथा साहित्य तुलसीदास के रामचरितमानस की तुलना में अकिंचन है। अतएव इस प्रकरण को तीन विभागों में विभक्त करना ठीक होगा—

१—तुलसीदास पूर्व हिन्दी रामकथा
२—तुलसीदास की रामकथा तथा
३—तुलसीदासोत्तर हिन्दी रामकथा

## तुलसीदास पूर्व हिन्दी रामकथा—

हिन्दी में सर्वप्रथम पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कवि चंदवरदायी के विवादग्रस्त महाकाव्य पृथ्वीराज रासो के द्वितीय प्रस्ताव में रामकथा का वर्णन आया है। चन्दवरदायी की रामकथा के बाद प्रायः एक सौ वर्षों के पश्चात् रामकथा सम्बन्धी वर्णन स्वामी रामानन्द आदि कृतियों में मिलता है। नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १६४१-४३ की खोज रिपोर्ट में विष्णुदास कृत भाषा बाल्मीकि रामायण नामक रचना का उल्लेख किया गया है। सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के ईश्वरदास की रामकथा सम्बन्धी तीन रचनाएं—भरत विलाप, अंगद पैज और रामजन्म उपलब्ध हैं। सूरदास के सूरसागर मे बाल्मीकीय रामायण के क्रमानुसार राम जन्म से लेकर राज्याभिषेक तक रामकथा के मार्मिक स्थलों पर लगभग १५० पद हैं। इसके अतिरिक्त अग्रदास ने अष्टयाम में तथा नाभादास ने अष्टयाम मे रामकथा का वर्णन किया है।

## तुलसीदास की रामकथा—

हिन्दी रामकथा साहित्य में तुलसी का अद्वितीय स्थान है। इनकी समस्त रचनाएं रामकथा से सम्बन्ध रखती है।

## समकालीन रामकथा सम्बन्धी कुछ रचनाएं इस प्रकार हैं—

सोढ़ी मेहरबान आदि रामायण (हिन्दी मिश्रित पंजाबी)

लालदास—अवध विलास

लक्ष्मरामायण तथा राजस्थानी का विस्तृत जंनी राम साहित्य विशेषकर समय सुन्दर कृत सीताराम चौपाई।

## तुलसीदासोत्तर हिन्दी रामकथा—

सन् १६६८ में सिक्खों के दसवें गुरु गोबिन्दसिंह द्वारा लिखी रामवतार कथा गोबिन्द रामायण के नाम से प्रकाशित हुई है।

रीतिकालीन हिन्दी राम-कथा साहित्य अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत है। रामकथा से सम्बद्ध खड़ी बोली गद्य की तीन रचनाएं उपलब्ध होती है—दौलतराम का पद्मपुराण (सन् १६५१) रामप्रसाद निरंजनी का योगवासिष्ठ (सन् १७४१) तथा सदल मिश्र का रामचरित (अध्यात्म रामायण का अनुवाद सन् १८०७)। प्राचीन परम्परा के कवियों के रामकथा से सम्बद्ध प्रबन्ध काव्य भी उपलब्ध होते है— जैसे रसिक बिहारी का रामरसायन, रघुनाथदास का विश्रामसागर रघुराजसिंह का रामस्वयंवर, वाघेली कुवरि का अवधविलास, बलदेवप्रसाद मिश्र का कौशल किशोर मैथिली में चन्दा झा का रामायण, शिवरत्न शुक्ल का श्रीरामावतार वंशीधर शुक्ल का रामभडैया तथा रामनाथ ज्योतिषी का श्रीरामचन्द्रोदय।

खड़ी बोली का आधुनिक रामकथा साहित्य काफी सम्पन्न है। रामचरित उपाध्याय का रामचरित चिन्तामणि, मैथिलीशरण गुप्त का साकेत अयोध्यासिंह उपाध्याय का वैदेही बनवास, बलदेव प्रसाद कृत साकेत सन्त, केदारनाथ मिश्र कृत कैकेयी तथा बालकृष्ण शर्मा नवीन कृत उर्मिला का हिन्दी रामकथा साहित्य में अपना-अपना विशेष स्थान है।

## मराठी रामकथा—

मराठी रामकथा साहित्य में एकनाथ द्वारा रचित भावार्थ रामायण सबसे बड़ा तथा सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। एकनाथ के प्रपौत्र मुक्तेश्वर का संक्षेप रामायण, समर्थ रामदास के दो रामायण, वेणाबाई देशपाण्डे कृत सीता स्वयंवर तथा एक अन्य रामायण तथा वामनपण्डित, जयाराम स्वामी वाडगौवकर एवं नागेश के सीता स्वयंवर ग्रन्थ उपलब्ध है। श्रीधर स्वामीकृत रामविजय परवर्ती मराठी रामकथा साहित्य का सबसे लोकप्रिय ग्रन्थ है। तजावर के कवि माधव की श्लोकबद्ध रामायण एवं ओविबद्ध रामायण आनन्दतनय की श्लोकबद्ध रामायण एवं सीता स्वयंवर भी उल्लेखनीय रामकथाएं हैं। इसके अतिरिक्त अठारहवी-उन्नीसवी और बीसवी शताब्दी में मराठी रामकथा बराबर लिखी गयी है।

## बंगला रामकथा—

बंगला रामकथा की प्रथम एवं सर्वाधिक लोकप्रिय रचना कृतिवास रामायण है। सत्रहवी शताब्दी का बंगला रामकथा साहित्य त्रिविधि है—रामलीला पदावलियाँ अद्भुत रामायण के अनुवाद तथा अध्यात्म रामायण के अनुवादों के रूप में। अठारवीं शताब्दी की प्रमुख रचनाएं इस प्रकार है—

रामानन्द यति तथा रामानन्द घोष कृत रामलीला वा श्रीराम पांचाली
जगरामरायकृत अद्‌भुत् रामायण
कमललोचन कृत रामभक्ति रसामृत
हरिमोहन गुप्त कृत अद्‌भुत् रामायण

इसके अतिरिक्त उन्नीसवी, बीसवी शताब्दी मे अनेकों रचनाएं लिखी गयी है।

**उड़िया रामकथा—**

उड़िया के सर्वप्रथम रामकथाकार १५वी शताब्दी के सिद्धेश्वर परिडा अथवा सारलादास हैं। उडिया का रामकथा साहित्य अत्यन्त विस्तृत हैं। अब तक अनेकानेक विधाओं में रामकथा सम्बन्धी साहित्य की सृष्टि बराबर होती जा रही है।

**असमिया रामकथा—**

बंगला एवं उड़िया भाषाओं के अनुसार ही असमिया में भी रामकथा सम्बन्धी साहित्य मिलता है। प्राचीनतम रामकथा साहित्य का माधवकदली कृत रामायण अत्यधिक लोकप्रिय है।

**गुजराती रामकथा—**

गुजराती मे कृष्ण कथा अधिक प्रिय है, तथापि लगभग पचास कवियों की राम-कथा विषयक कृतियां उपल ध हैं।

**सिंहली रामकथा—**

डॉ० दुल्के लिखते हैं सिंहलद्वीप में कोहोम्बा यक्कम नामक धार्मिक विधि के समय सिंहल के प्रथम राजा विजय, नाम राजकुमारी कुवेभी तथा सीता-त्याग की काव्यात्मक कथाओं का प्रधान रूप से पाठ होता है।

**कश्मीरी रामकथा—**

कश्मीरी साहित्य मे रामकथा का प्रवेश बहुत देर से हुआ, लेकिन उसके पश्चात् काफी रचनाएं हुई।

**फारसी रामकथा—**

फारसी की रामकथा अति प्राचीन है। अकबर के आदेशानुसार अल बदायूनी ने ई० स० १५८३-१५८६ में बाल्मीकीय रामायण का फारसी अनुवाद किया था। फारसी रामकथा की कुछ रचनाएं इस प्रकार है—

**रामायण फैजी**

लाला अमानतराय कृत बाल्मीकीय रामायण का पद्यानुवाद।

उर्दू रामकथा—

उर्दू में रामकथा विषयक साहित्य अत्यल्प है। जो है उसका रामकथा की दृष्टि से विशेष महत्त्व नहीं है। १६वी शताब्दी की निम्न चार रामकथाएं उल्लेखनीय हैं—

मुन्शी जगन्नाथ खुश्तर कृत रामायण खुश्तर

मुन्शी शंकरदयाल फर्हत कृत रामायण मंजूम

बाकेबिहारी लाल बहार का रामायण बहार

सूरजनारायण मेह का रामायण मेह

इस प्रकार राम साहित्य की व्यापकता एवं लोकप्रियता निसन्दिग्ध है।

# वेदभाष्यकार : सायणाचार्यः—

प्रोफेसर मनुदेव "बन्धु"
प्राध्यापक वेद विभाग गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)

वेदव्याख्यातृषु प्रकाण्डकर्मकाण्डपण्डितपारीन्द्रस्य भगवतः सायणाचार्यस्य नाम यावच्चन्द्रदिवाकरौ भवितृ । आचार्यसायणस्य लेखनी समग्रवैदिकसाहित्ये चचाल । अमुष्यैव महाभागस्य कृपया वैदिकसाहित्य-जातं सुरक्षितम् ।

सायणाचार्योऽसौ प्रथमबुक्कभूपतेः विद्यागुरुं सचिवञ्चात्मानमवगमयति । अस्य चाग्रजो भ्राता माधवाचार्यः, प्रथमबुक्कभूपतेः साचिव्यधुरं वहति स्म, पश्चात् त्यक्तसर्वपरिग्रहः संन्यासाश्रममवलम्ब्य विद्यारण्यस्वामीत्याख्यया प्रथितोऽभवत् । शृङ्गेरीमठे च श्रीमच्छङ्करभगवन्मुनिपादपीठमधिष्ठाय च एष प्रकाण्डपण्डितः विविधविषयकान् संस्कृतवाङ्मयस्य शिरोरत्नभूतान् बहून् ग्रन्थान् जग्रन्थ ।

सायणाचार्यस्यापि नैके ग्रन्था माधवीयेतिनाम्नैव दृश्यन्ते । एतावता विदितं भवति यत्सायणाचार्यस्य समयोऽपि स एव यो बुक्कभूपतेः समयः । बुक्कभूपतेः कालश्च १३८६ क्रैस्ताब्दे निर्धारितः कालविद्भिः ।

सोऽयमाचार्यः ऋग्वेदसंहितैतरेयब्राह्मणारण्यकादीनां व्याख्याता, अन्येषाञ्चानेकग्रन्थरत्नानां प्रणेता, वैदिकवाङ्मयस्य परमोद्धारकः यावज्जीवनं सुरभारतीश्रीसमृद्ध्यर्थं प्राणपणेनाऽपि यत् प्रयतितवान् तत्को नाम वैदिकदेशिको न वेत्ति । अनेन वैदिकविद्वन्मण्डलशेखरायमाणेन षिकल्पेनानुगृहीता वयमद्यनूनं कृतिनः समभ्युपपन्ना गौरवस्य गर्वस्य च परां काष्ठामालम्बामहे ।

नूनं भाष्यकारकलापे तत्र भवान् सायणाचार्यः सर्वमूर्धाभिषिक्तो विराजते । अनेन उत्कटतरोऽप्येष वेदार्थपन्था अत्यर्थं सरलीकृतः । वेदार्थभास्करोऽयं यदि नाऽभविष्यत्तर्हि वेदार्थज्ञानं सर्वथान्धे तमस्येव नितरां न्यमङ्क्ष्यत् । तदर्थञ्च मानवजातिरियं यावच्चन्द्रदिवाकरौ स्थास्यति तत्कार्तज्ञ्यपाशबद्धेति निर्विशङ्कम् । परन्तु सहैव कतिचन वैदिका अतिमात्रमेतदपि तद्विषये सखेदमाकलयन्ति समकालमेव, यदि नाम सायणाचार्योऽसौ एकमात्रं यज्ञपरमेवार्थमनभिनन्द्य आधिभौतिकाधिदैवतानप्यर्थान् वैज्ञानिकधिषणया व्यरचयिष्यत्तर्हि लोकस्य महानुपकारः समपत्स्यत । महीयांश्च स वेदार्थप्रकाशः कयापि दिव्याभया व्यद्योतिष्यत । वस्तुतः सर्वत्रैव प्रायशः एष महारथः विविधज्ञानविज्ञानाद्यनेकतत्त्वसम्भृतानपि मन्त्रान् हठादाकृष्य यज्ञपरेष्वेवार्थावष्टम्भेषु निगडितवान् इत्याकलयतः कस्य सहृदयस्य न दूयते किल चेतः । सोऽस्य यज्ञपरार्थपारवश्यव्यामोहोऽपि प्रणिभालनीयो दोषज्ञैः । तद्यथा:—

| | |
|---|---|
| मर्तासो मनुष्याः (वयं यजमानाः) | (ऋग्वेद १-१४४-५) |
| मर्तासो मनुष्याः (ऋत्विजः) | (ऋग्वेद ३-६-१) |
| नरं पुरुषम् (यजमानम्) | (१-३१-१५) |
| जन्तुभिः (ऋत्विग्लक्षणैर्मनुष्यैः) | (१-९६-३) |
| जनाः प्रज्ञासम्पन्नाः (यजमानाः) | (१-४५-६) |

| | |
|---|---|
| जन्तुभिः (ऋत्विग्भिः) | (३-२-५) |
| विप्रेभिः (मेधाविभिः ऋत्विग्भिः) | (१-२-६) |
| दाशुषे (यजमानाय) | (१-१४०-२) |
| क्षितयः (मनुष्याः ऋत्विजः) | (६-१-५) |
| कविभिः (मेधाविभिः ऋत्विग्भिः) | (१-७६-५) |
| कवयः (क्रान्तदर्शिनो अध्वर्यवः) | (३-८-४) |

मातरिश्वा (मातरि यागे श्वसिति चेष्टते इति मातरिश्वा–यजमानः) इत्यादि बहुत्र प्रक्रान्तम्। अहो नु खलु कीदृशः पाण्डित्यप्रौढ़िमा पण्डितमण्डलाखण्डलस्य सायणार्यस्य ? कीदृशी च पुनः यज्ञपरार्थ-प्रवणता कर्मकाण्डप्रकाण्डपण्डितस्य, यः को वापि शब्दः बलाद् यजमानपरत्वेनैवानेनायोज्य व्याख्यातः। नासौ प्रायशः प्रकरणमनु सन्दधाति न देवतामामन्त्रयते, नार्थान्तरप्रसरमपि मनागवतारयति बुद्धिपद्धतिम्। न कदाचित् कथञ्चिदपि च विरमयति यज्ञपुरुषम्। यथा मृगतृष्णिकयाकृष्टो मृगो जलमेवानुसन्दधाति यत्र-तत्र-सर्वत्र, तथैवासावपि खलु न क्षणमपि विजहाति यज्ञानुषङ्ग प्रसङ्गम्। यथा च "पित्तेन दूने रसने सिताऽपि तिक्तायते हंसकुलावतंस !" एवमेव यज्ञयागादिरागरञ्जितनयनयुगलोऽसौ सर्वत्र मन्त्रेषु यज्ञमेव खल्वाकलयति बहुशः। "यज्ञात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने" इति मूल मन्त्र इवानेन स्वीकृतोऽवभाति। अहो नु खलु अस्य महामेधाविनः प्रदीप्तप्रज्ञावतोऽपि सायणस्य कीदृशोऽयं मतिविभ्रमः ? नून तच्छोचनीय-मेवाभवत्। मन्यामहे अत्र हि किल तदीयकालेऽभितः प्रसृतचण्ड कर्मकाण्डस्याखण्डसाम्राज्यमेव भूम्ना-ऽपराध्यति। कारणान्तरन्तु निपुणं मृग्यमाणमपि नाधिरोहति प्रज्ञानपदवीमितिदिक्। यद्यपि नाम क्वचित्-क्वचित् तेन वैज्ञानिका अप्यर्था निरतिशय पाटवेन कृताः किन्त्वतिवैरल्येन। भवतु नामैतत्, तथापि एतत्तु निश्चितं यत् सायणाचार्योऽयं वेदविद्यासम्भारभासुरः सुयशः शरीरेणाप्यद्यापि जीवति जीविष्यति च कल्पा-न्तपर्यन्तमित्यत्र न कश्चन संशय इति ॥

गतांक से आगे—

# महाभाष्योक्त ज्ञापक और उनके मूल स्रोतों का अध्ययन—

—डॉ० रामप्रकाश शर्मा
प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

तथापि 'गापोष्टक्' सूत्र में टक् प्रत्यय के किल्करण को, जिसका प्रयोजन केवल आकार लोप ही है, अन्य किसी प्रयोजन की सम्भावना नहीं है, ज्ञापक रूप में उपन्यस्त कर 'न कारस्य गुणो भवति' इस वचन को ज्ञापित किया गया है। इस तरह 'इको गुणवृद्धी' सूत्र में इग्ग्रहण के अभाव में भी आकार के स्थान में गुण की आपत्ति सम्भव न होने के कारण याता वाता आदि प्रयोगों में कोई दोष नहीं होगा। आकार के स्थान में गुण की निवृत्ति के लिये इकोगुणवृद्धी सूत्र में इक् के ग्रहण की कोई आवश्यकता नहीं है। अर्थात् इकोगुणवृद्धी सूत्र में इक् के ग्रहण का प्रयोजन आकार के स्थान में गुण की निवृत्ति नहीं हो है। अन्त में व्यंजन के स्थान में गुण की निवृत्ति को प्रयोजन सिद्ध कर इक् के ग्रहण को सार्थक सिद्ध किया गया है। इसी प्रसंग में श्री भट्टोजिदीक्षित ने 'शब्दकौस्तुभ' में स्पष्ट कहा है कि–'उक्तरीत्या ज्ञापकेनैवा–त्सन्ध्यक्षराणां का विधान किया है। जन धातु के न के स्थान में गुण करने पर एकार ओकार गुण की प्रसक्ति नहीं हो सकती क्योंकि अर्धमात्रिक व्यञ्जन के स्थान में मात्राद्वयन्यूनकालिकत्वेन अन्तरतम होने के कारण एक मात्रिक अकार ही गुण प्रसक्त होगा। यदि अनुनासिक नकार के स्थान में अनुनासिक अकार गुण की प्राप्ति की सम्भावना हो तो वह पररूप द्वारा शुद्ध हो जायगा। इस तरह सप्तम्यां जनेर्डः सूत्र में ड–प्रत्यय के डित्करण द्वारा 'न व्यञ्जनस्य गुणो भवति' इस वचन के ज्ञापित हो जाने के कारण कोई दोष नहीं हो सकता 'इकोगुणवृद्धी' सूत्र में इक् का ग्रहण नहीं करना चाहिये। अन्त में भाष्यकार ने नगः अगः आदि प्रयोग सिद्ध करने के लिये गम् धातु से मकार के स्थान में यदि गुण किया जाय तो स्थान कृत् आन्तरतम्य को लेकर मकार के स्थान में ओकार गुण प्राप्त होने लगेगा। नगः आदि प्रयोगों की सिद्धि नहीं होगी। अतः इकोगुणवृद्धी सूत्र में इग्ग्रहण अवश्य कर्तव्य है। कैयट ने 'गमेरप्ययं डो वक्तव्यः' इस भाष्य की व्याख्या करते हुए कहा है कि—सप्तम्या जनेर्ड इत्यतोऽन्येष्वपि दृश्यत इत्यद्द डोऽनुवर्तमानो गमेरपि विधीयत इत्यज्ञापक डित्वमिति व्यञ्जननिवृत्यर्थं सूत्रं स्थितम्' अर्थात् सप्तम्यां जनेर्डः सूत्र के उत्तर में पढ़े गये अन्येष्वपि दृश्यते, सूत्र में दृशिग्रहण के सामर्थ्य से गम् धातु से ड प्रत्यय सिद्ध हो सकता है, गम् धातु से ड प्रत्यय करने के लिये पृथक्-पृथक् अनावश्यक है। अतः नगः आदि प्रयोग की सिद्धि से

लिये डप्रत्यय का डित्करण आवश्यक है। इसके द्वारा 'न व्यञ्जनस्य गुणो भवति' वचन ज्ञापित नहीं हो सकता। अतः इक् का ग्रहण 'इकोगुणवृद्धी' सूत्र मे आवश्यक है।

'न व्यञ्जनस्य गुणो भवति' यह वचन भी पूर्वपक्ष की स्थापना के लिये प्रांसगिक रूप मे उपन्यस्त है। अतः इसे शास्त्रशेष वचन के रूप में इस शास्त्र मे मान्यता नही दी गई है।

## ६- न सिच्यन्तरङ्गं भवति

यह वचन भी 'इको गुणवृद्धी' सूत्र के भाष्य में उपन्यस्त है। इको गुणवृद्धी सूत्र में वृद्धि ग्रहण की आवश्यकता पर विचार करते हुए भाष्यकार ने कहा है कि—सिजर्थं वृद्धिग्रहणं कर्तव्यम्। सिचि वृद्धिरविशेषेणोच्यते सेको यथास्यादनिको मा भूदिति, अर्थात् सिचिवृद्धिः परस्मैपदेषु सूत्र द्वारा सिच् परे रहते वृद्धि का विधान स्थानी के निर्देश के बिना ही किया गया है, यह वृद्धि इक् के स्थान मे ही हो अनिक् के स्थान मे न प्राप्त हो अतः 'इकोगुणवृद्धी' सूत्र में वृद्धिग्रहण आवश्यक है ताकि वृद्धिविधायक सिचिवृद्धिः परस्मैपदेषु सूत्र में इक् पद उपस्थित होकर अनिक् के स्थान मे वृद्धि होने से रोक सके। अन्यथा अचिकीर्षीत् इत्यादि प्रयोगो में अकार के स्थान मे वृद्धि की प्रसक्ति होने लगेगी। यदि इन प्रयोगो में वृद्धि को बाध कर 'अतोलोपः' की प्रवृत्ति होने के कारण दोष नही हो सकता है तो अयासीत्, अवासीत् आदि प्रयोगों मे वृद्धि की व्यावृत्ति के लिये इकोगुवृद्धी सूत्र में वृद्धिग्रहण आवश्यक हो है। इस तरह सिचिवृद्धिः परस्मैपदेषु सूत्र में अनिक् की व्यावृत्ति के लिए इक् के सम्बन्धार्थ इकोगुणवृद्धी सूत्र मे वृद्धिग्रहण की आवश्यकता के विचार के प्रसंग मे सभी उदाहरणों का प्रौढि द्वारा खण्डन कर अन्त में भाष्यकार ने पुनः कहा कि—'उत्तरार्थमेव तर्हि सिजर्थं वृद्धिग्रहणम् कर्तव्यम्। सिचि वृद्धिरविशेषेणोच्यते सा क्ङिति मा भूत्–न्यनुवीत्, न्यधुवीत्। णू स्तवेन, धू विधूनने, धातु से लुङ् लकार में नि उपसर्ग लगाकर न्यनुवीत् न्यधुवीत् प्रयोग सिद्ध किये गये हैं। इन प्रयोगो में नू धू धातु से लुङ् तिप् सिच् इडागमादि कार्य हो जाने के बाद 'गाङ्कुटादिभ्यो ञ्णिन्ङित् सूत्र से प्रत्यय के ङित्व हो जाने पर क्ङिति च सूत्र से वृद्धि के निषेध के लिये सिचिवृद्धिः परस्मैपदेषु सूत्र द्वारा विहित वृद्धि को इग्लक्षण वृद्धि बनाने के लिये इकोगुणवृद्धि सूत्र में वृद्धिग्रहण आवश्यक है। अन्यथा सिचिवृद्धिः परमैपदेषु सूत्र मे इक् पद की उपस्थिति न होने के कारण इस सूत्र से प्राप्त वृद्धि इग्लक्षणवृद्धि नही मानी जा सकेगी, अतः क्ङिति च सूत्र द्वारा इसका निषेध नहो होगा। इस तरह न्यनुवीत्, न्यधुवीत् प्रयोगों की सिद्धि सम्भव नही होगी अतः क्ङिति च सूत्र से निषेध सिद्धि के लिये सिचिवृद्धिः परस्मैपदेषु सूत्र में इक् का सम्बन्ध आवश्यक है। एतदर्थ 'इकोगुणवृद्धी' सूत्र में वृद्धिग्रहण आवश्यक ही है।

इस प्रयोजन का भी खण्डन करते हुए भाष्यकार ने कहा कि 'नि+अनु इसईत्' नि अ धू इस्

ईत्' इस अवस्था में 'आश्रिश्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ' सूत्र द्वारा उवङादेश वृद्धि की अपेक्षा अन्तरङ्ग होने के कारण पहले उवङादेश हो होगा तदनन्तर अन्त में अच् वर्ण के न होने से इस सूत्र की प्राप्ति सी नही रह जायगी । अर्थात् अन्त में हल् के वर्ण के रहने पर वदव्रतहलन्तस्या चः सूत्र से हलन्तलक्षणवृद्धि की ही प्राप्ति के कारण सिचिवृद्धिः परस्मैपदेषु सूत्र की प्रवृत्ति केवल अजन्त स्थल में ही होगी । यहाँ अन्त में अच् वर्ण न होने के कारण सिचिवृद्धिः परस्मैपदेषु सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होगी । इस तरह यदि सिच के विषय मे अन्तरङ्ग को प्रवृत्ति इकोगुणवृद्धी सूत्र में वृद्धिग्रहण की आवश्यकता नही रह जाती है । परन्तु सिच् के विषय में वृद्धि को अपेक्षा अन्तरङ्ग को प्रवृत्ति ही उचित नहीं है । इस विषय में अनेक प्रयोगों में दोष तथा उसका उद्धार दिखाते हुए भाष्यकार ने इस सिद्धान्त को ज्ञापक द्वारा प्रमाणित किया है—एवं तर्ह्याचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति-'न सिच्यन्तरङ्गं भवति' इति । यदयम् अतो हलादेर्लघोरित्यकारग्रहणं करोति । अतो हलादेर्लघोः' सूत्र मे अकारग्रहण अकोषीत्, अमोषीत् (कुष् धातु मुष् धातु) में वृद्धि की व्यावृत्ति के लिये किया गया है । यदि सिच् के विषय में वृद्धि की अपेक्षा अन्तरङ्ग की प्रभृत्ति होती तो यहाँ अन्तरङ्गत्वाद् गुण किये जाने के बाद लघु उपधा के अभाव मे ही वृद्धि नही होती इस सूत्र में अकारग्रहण व्यर्थ ही हो जायगा । किन्तु आचार्य ऐसा समझ रहे है कि 'न सिच्यन्तरङ्ग भवति' इति । अर्थात् सिच् के विषय में अन्तरङ्ग को प्रवृत्ति नहीं होती है । 'अकुटीत्' (कुट् धातु) इत्यादि प्रयोगों में उकार के स्थान में वृद्धि की व्यावृत्ति के लिये अकार ग्रहण को सार्थकता नही कही जा सकती है, क्योकि अन्तरङ्ग होने से वृद्धि को बाध कर प्रवृत्त हुए गुण का 'क्ङिति च' सूत्र द्वारा निषेध हो जाने पर भी देवदत्तहन्तृहतन्यायेन वृद्धि की प्रवृत्ति ही सम्भव नहीं है । देवदत्त के हन्ता का नाश होने पर भी देवदत्त का उज्जीवन सम्भव नहीं ही है । इस तरह अतो हलादेर्लघोः सूत्र में अकार ग्रहण व्यर्थ होकर यह ज्ञापित कर ही रहा है कि सिच् के विषय में अन्तरङ्ग की प्रवृत्ति नही होती है । 'न सिच्यन्तरङ्ग भवति इति । सिच् के विषय में वृद्धि की अपेक्षा अन्तरङ्ग की प्रवृत्ति न होना न्यायसिद्ध भी है । क्योंकि येन नाप्राप्ति-न्याय से सिच् परे वृद्धि द्वारा अन्तरङ्ग का ही बाध हो जायगा । इस तरह अपवाद पक्ष में इस ज्ञापक का कोई उपयोग नही है । अतएव भाष्यकार ने यदि तर्हि सिच्यन्तरङ्ग भवति अकार्षीत्, अहार्षीत्, गुण कृते रपरत्वे चा नान्त्यत्वाद्वृद्धिर्न प्राप्नोति । इस भाष्य में 'यदि तर्हि, शब्द से वृद्धि को अपवादता स्वीकार करते हुए उसके विषय में अन्तरङ्ग को प्रवृत्ति को दोषपूर्ण सूचित किया है । अर्थात् बाध्य-सामान्यचिन्ता पक्ष में अन्तरङ्ग की अवश्य प्राप्ति मे ही वृद्धि का आरम्भ होने के कारण वृद्धि बाधक हो जायगी । 'यत्कर्तव्यमवश्य प्राप्तो यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति । यह येन नाप्राप्ति न्याय का स्वरूप है । इस न्याय से स्वप्राप्तिकाल में अवश्य प्राप्त होने मात्र से हो बाध्यबाधकभाव स्वीकार किया जाता है, न कि सर्वथा निरवकाश होने पर ही, 'सत्यपि संभवे बाधनं भवति' उत्सर्ग शास्त्र की प्रवृत्ति के पूर्वकाल

अथवा उत्तरकाल में अपवाद शास्त्र के सम्भव में भी बाध्य-बाधकभाव स्वीकार किया जाता है। अन्यथा 'सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयताम्, तक्रं कौण्डिन्याय' इस वाक्य में तक्रदान से दधिदान का बाध नही हो सकता है। क्योकि दधिदान के पूर्व का या उत्तरकाल में तक्रदान तो सम्भव है ही। अतः येन नाप्राप्ति-न्याय का आश्रयण लेकर बाध्य-सामान्यचिन्ता पक्ष में वृद्धि अन्तरङ्गमात्र का बाधक हो सकता है। ज्ञापक अनावश्यक ही है। बाध्यविशेष चिन्ता पक्ष का आश्रय लेने पर 'मध्येऽपवादन्याय' से वृद्धि केवल उवङ् का ही बाधक होगी गुण का बाधक नही हो सकेगी। इस तरह वृद्धि की अपेक्षा पर होने के कारण गुण ही बलवान् होकर बाधक होगा। 'मध्ये पठिता ये अपवादाः ते पूर्वान् विधीन बाधन्ते नोत्तर न्' यही मध्येपवादन्याय का स्वरूप है। सिच् परे वृद्धि मध्यवर्ती अपवाद है। वह स्वपूर्ववर्ती उवङ् का बाध कर सकता है परन्तु स्वोत्तरवर्ती गुणशास्त्र का बाध नहीं कर सकता। इस तरह अकोषीत् आदि प्रयोगों में वृद्धि की अपेक्षा गुण बलवान् होने के कारण वृद्धि का बाधक हो जायगा। तदनन्तर लघु उपधा के अभाव में वृद्धि की प्राप्ति सम्भव न होने के कारण अतोहलादेर्लघोः सूत्र में अकार ग्रहण व्यर्थ ही है। अकुरीत् आदि प्रयोगों में वृद्धि की व्यावृत्ति के लिये भी अकार ग्रहण आवश्यक नही हो सकता। क्योकि यहां भी अन्तरङ्ग गुण द्वारा वृद्धि का बाध हो जाने पर गुण का विङति च से निषेध होने में वृद्धि की प्रवृत्ति सम्भव नहीं हो सकती। जैसे देवदत्त के हन्ता का हनन कर देने पर भी देवदत्त नही हो सकता है अतएव भाष्यकार ने अपवाद प्रतिषिद्धे उत्सर्गोऽपि न भवति अपवाद के निषिद्ध हो जाने पर उत्सर्ग भी प्रवृत्त नही होता है, इसे स्वीकार कर सुजाते अश्व सूनृते इत्यादि प्रयोगों मे पूर्वरूप का निषेध होने पर अयादि आदेश का भी अभाव दिखाया है—पूर्वरुपे प्रतिषिद्धे अयादयोऽपि न भवन्ति। इस तरह बाध्यविशेष-चिन्तापक्ष का आश्रयण करने पर अतो हलादेर्लघोः सूत्र में अकार ग्रहण को 'न सिच्यन्तरङ्ग भवति' इस वचन में ज्ञापक ही स्वीकार करना पडेगा। अतएव भाष्यकार ने 'यच्च करोत्यकारग्रहणं लघोरिति कृतेऽपि' यह कह कर ज्ञापक का पुनः उपन्यास किया है। यदि भिद्योद्धयौ नदे, तौ सन् इत्यादि निर्देश के अनुसार 'अपवादे प्रतिषिद्धे उत्सर्गोऽपि न भवति' इस न्याय को सार्वत्रिक मानना उचित नही होगा, अन्यथा वृक्षौ आदि प्रयोगों में नादिचि द्वारा अपवाद भूत पूर्वसवर्णदीर्घ का निषेध होने पर पुनः वृद्धिरेचि से वृद्धि की प्रवृत्ति सम्भव नही हो सकेगी। इस तरह 'तौ, भिद्योद्धयो,' आदि सभी निर्देष असंगत हो जायेगे। ऐसे स्थल में देवदत्त हन्तृहतन्याय भी स्वीकार नही किया जा सकता है क्योंकि देवदत्त के हन्ता का विनाश होने पर देवदत्त का उज्जीवन न भी हो किन्तु देवदत्त को मारने के लिये समुद्यत व्यक्ति का समुद्यमकाल में ही यदि हनन कर दिया जाय तो अवश्य ही देवदत्त का उज्जीवन होगा। इसी तरह उत्सर्ग के हनन के लिये समुद्यत अपवाद शास्त्र का समुद्यमकाल में ही निषेध होने पर उत्सर्ग शास्त्र को प्रवृत्ति में कोई बाधा नही हो सकती। इस तरह स्वीकार किया जाय तो बाध्यसामान्यचिन्तापक्ष का आश्रयण कर येन

नाप्राप्ति न्याय से हो सिच्यन्तरङ्गं न भवति, इस वचन का साधन करना आवश्यक होगा। इस तरह पक्ष भेद के अनुसार बाध्यसामान्यचिन्तापक्ष में येन नाप्राप्तिन्याय द्वारा ही सिच्यन्तरङ्ग न भवति इस वचन की सिद्धि हो सकती है। बाध्यविशेष चिन्ता पक्ष में अतोहलादेर्लघोः सूत्र में अकारग्रहण इस वचन का ज्ञापक होगा। शब्दकौस्तुभ में भट्टोजिदीक्षित ने इस सन्दर्भ के अन्त में स्पष्ट लिखा है—तथा च पक्षभेदाश्रयेणातो हलादेरित्यङ्ग्रहणमपि ज्ञापकमिति स्थितम्। सर्वथा इस वचन को स्वीकार करना चाहिए—क्योंकि इस वचन का प्रयोजन स्पष्ट है, यदि सिच् के विषय में अन्तरङ्ग की प्रवृत्ति स्वीकार की जाय तो यङ्लुगन्त चिधातु, नीधातु तथा चिरि, जिरि, आदि धातु से लुङ् सिच् में अचेचायीत्, अनेनायीत्, अचिरायीत्, अजिरायीत् आदि प्रयोग सिद्ध नही होंगे। क्योंकि वृद्धि की अपेक्षा पहले अन्तरङ्ग होने के कारण गुण तथा अयादेश कर देने पर यान्त हो जाने से ह्ययन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् सूत्र से वृद्धि के निषेध की प्रसक्ति हो जायगी।

इस तरह यह वचन सप्रयोजन होने के कारण अवश्य ही शास्त्रशेषत्वेन स्वीकरणीय है। बाध्यविशेषचिन्तापक्ष मे मध्येपवादन्याय द्वारा उवङादेश का ही बाध किया जा सकता है, गुण का बाध सम्भव नही होगा। अतः उक्त प्रयोगों की सिद्धि नहीं हो सकेगी। इसलिये—सिच् के विषय में समस्त अन्तरङ्गों के बाध की सिद्धि के लिये बाध्यसामान्यचिन्तापक्ष का ही आश्रयण करना चाहिये। इसी सिद्धान्त के उपपादन के लिये भाष्यकार ने ज्ञापक का उपन्यास किया है। यदि सिच् के विषय मे समस्त अन्तरङ्गों का बाध येन नाप्राप्तिन्याय से ही सिद्ध हो सकता तो भाष्यकार द्वारा ज्ञापक का उपन्यास सर्वथा व्यर्थ हो जायगा। अतः आध्यसामान्य चिन्तापक्ष के आश्रयणार्थ ही यह ज्ञापक स्वीकरणीय है। ऐसी स्थिति मे कैयट ने जो यह कहा है कि 'न्यायादप्येतत्सिध्यति, येन नाप्राप्तिन्यायेनान्तरङ्गस्य वृद्धया बाधात्। इति। यह विचारसंगत नही कहा जा सकता। क्योंकि यदि सिच् के विषय में समस्त अन्तरङ्गों का बाध सर्वथा न्यायसिद्ध होता तो ज्ञापकोपन्यास निरर्थक ही हो जाता।

इस परिस्थिति मे न्यनुवीत् न्यधुवीत् इत्यादि प्रयोगों में वृद्धि के निषेध के लिये क्ङिति च सूत्र की प्रवृत्ति आवश्यक है। क्ङिति च इस निषेध-सूत्र की प्रवृत्ति वृद्धि के इग्लक्षणात्व के बिना सम्भव नही होगी। अतः वृद्धि में इग्लक्षणत्व सिद्ध करने के लिये इकोगुणवृद्धी सूत्र में वृद्धिग्रहण भी आवश्यक ही है। तथा सिच् के विषय में अन्तरङ्गमात्र के लाभ के लिये बाध्यसामान्यचिन्तापक्ष के आश्रयण द्वारा 'सिच्यन्तरङ्ग न भवति' यह सिद्धान्त रूप वचन भी अत्यन्त आवश्यक है। इस सिद्धान्त के साधन के लिये ज्ञापक का उपन्यास भी अत्यन्त आवश्यक है।

१०—भवत्युपधालक्षणस्य गुणस्य प्रतिषेध इति

क्ङिति च सूत्र में भाष्यकार ने विचार किया है कि इस सूत्र से निमित्त ग्रहण करना चाहिये।

यदि कित् ङित् परे रहते प्राप्त गुण का निषेध किया जाय तो उपधा में प्राप्त गुण का निषेध नहीं होगा। भिन्नः भिन्नवान् आदि प्रयोगों में सिद्ध धातु से निष्ठा प्रत्यय परे रहते पुगन्तलघूपधस्त सूत्र से भिद् मे इकार के स्थान में गुण प्राप्त है। वह इकार निष्ठा प्रत्यय से अव्यवहित पूर्व न होने के कारण उसके स्थान में प्राप्त हुए गुण का निषेध क्ङिति च सूत्र द्वारा नहीं होगा। इस तरह भिन्नः भिन्नवान् में गुण निषेध की सिद्धि नहीं होगी। केवल चितः स्तुतः आदि प्रयोगों में ही गुण का निषेध सिद्ध होगा अतः इस सूत्र मे निमित्त ग्रहण करना आवश्यक है। निमित ग्रहण करने पर कित्, ङित् को निमित मान कर होने वाले जो गुण तथा वृद्धि, वह नहीं होते हैं। इस तरह की व्याख्या सूत्र की होगी। इस व्याख्या में भिन्नः, भिन्नवान् आदि प्रयोगों में गुण के निषेध की सिद्धि हो सकती है, क्योकि भिन्नः में जो गुण प्राप्त है वह कित् निष्ठा प्रत्यय को निमित्त बनाकर ही प्राप्त है उसका निषेध हो सकेगा। इस तरह उपधा गुण के निषेध के लिये क्ङिति च सूत्र में निमित्त ग्रहण की आवश्यकता सिद्ध करने के बाद निमित्त ग्रहण का प्रत्याख्यान भी भाष्य में किया गया है—उपधार्थेन यावन्नार्थः इति। अर्थात् उपधागुण के निषेध के लिये जो निमित्त ग्रहण की आवश्यकता बताई गई है वह अनावश्यक है, अर्थात् निमित्त ग्रहण के बिना भी भिन्नः, भिन्नवान् आदि प्रयोगों में गुण निषेध की सिद्धि हो जायगी। उपधागुण के निषेध के साधन के लिये भाष्य में अनेक उपायों का प्रदर्शन किया गया है, उनमें यह भी एक उपाय भाष्यकार ने बताया है "अथवाचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'भवत्युपधालक्षणस्य गुणस्य प्रतिषेधः, इति।" यदयं त्रसिगृधि धृषि क्षिपेः क्नुः, 'इको झल्, हलन्ताच्चेति च नसनौ कितौ करोति। अर्थात् त्रसि गृधि धृषि क्षिपेः क्नुः सूत्र मे जो क्नु प्रत्यय को कित् किया गया है, इससे ज्ञापित हो रहा है कि उपधा स्थानिक गुण का भी क्ङिति च सूत्र से निषेध से होता है। क्योंकि क्नु प्रत्यय के कित् करने का यही प्रयोजन है कि गृध्नुः, धृष्णुः क्षिप्नुः प्रयोगों में गृध, धृष, क्षिप् धातु से उपधा को कथाचित् गुण की प्रसक्ति न हो। यदि यहा कित् प्रत्यय से अव्यव-हित पूर्व न होने के कारण कित्करण सर्वथा व्यर्थ ही हो जायगा। इसी तरह 'हलन्ताच्च' सूत्र में इको झल् को अनुवृत्ति कर इक् समीप झलादि सन् को कित् विधान किया जाता है। इस कित् विधान का भी प्रयोजन यही है कि जुघुक्षति, विभित्सति आदि प्रयोगों में गुह भिद् आदि धातु से सन् प्रत्यय करने पर उपधा गुण न हो। यदि कित् प्रत्यय सन् से अव्यवहित पूर्व न होने के कारण गुण के निषेध की प्रवृत्ति न स्वीकार की जाय तो 'हलन्ताच्च' सूत्र द्वारा सन् का कित्करण भी व्यर्थ ही हो जायगा। इससे यह स्पष्ट है कि आचार्य ने यह अनुभव किया है कि 'उपधास्थानिक' गुण का भी निषेध क्ङिति च सूत्र से होता है। इसीलिये क्नु प्रत्यय तथा सन् प्रत्यय को कित् विधान किया है। इस कित्करण द्वारा यह अनुमान किया जा सकता है कि क्ङिति च सूत्र में 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' यह परिभाषा अव्यवधानांश-विकल होकर ही उपस्थित होती है। केवल पूर्व पर के सन्देह की निवृत्ति के लिये पूर्व मात्र का निश्चय

इस परिभाषा द्वारा होता है । अव्यवधानांश का उक्त किल्करण को देखकर परित्याग कर दिया जाता है । कैयट ने इसी सन्दर्भ को लेकर स्पष्ट किया है कि—लिङ्गान्निर्दिष्टाङ्ग विकला 'तस्मिन्निति परिभाषो-पतिष्ठत इत्यर्थ ।' इस तरह क्ङिति च सूत्र में निमित ग्रहण के प्रत्याख्यानार्थ अनेक उपायों का प्रदर्शन करते हुए भाष्यकार ने इस ज्ञापक का भी प्रत्यख्यानोपाय रूप में उपन्यास किया है । क्ङिति च सूत्र में पर सप्तमी स्वीकार करने पर भी इस ज्ञापक से 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' परिभाषा की उपस्थिति अव्यवधानांश विकल होने के कारण कोई दोष नही होगा । क्ङिति च सूत्र में निमित्त ग्रहण अनावश्यक ही हैं । यही भाष्य का तात्पर्य है, एतदर्थं ही इस ज्ञापक का उपन्यास किया गया है । ज्ञापक द्वारा तस्मिन्नितिनिर्दिष्टे पूर्वस्य परिभाषा की उपस्थिति अव्यवधानांश विकल स्वीकार करने पर नेनिक्ते आदि प्रयोगों में अभ्यास के गुण का निषेध नही किया जा सकता है क्योंकि 'येन नाव्यवधानं तेन व्यवहितेऽपि' इस न्याय से एक वर्ण के व्यवधान में निषेध स्वीकार किये जाने पर भी अनेक वर्णों के व्यवधान में निषेध प्रवृत्ति नहीं हो सकती है । अतः कोई दोष नहीं होगा । ज्ञापक द्वारा भी क्ङिति च सूत्र में निमित्त ग्रहण का प्रत्याख्यान संगत ही है ।

(क्रमशः)

# भगवान् तुम्हें सुख दे, आश्रय दे

—रामप्रसाद वेदालङ्कार
आचार्य एवं उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)

"इन्द्रो वः शर्म यच्छतु"

**प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।**
**उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥ सामवेद १८६२ ॥**

अन्वय :—नरः प्रेत । जयत । इन्द्रः वः शर्म यच्छतु । वः बाहवः उग्राः सन्तु, यथा अनाधृष्याः असथ ।

अन्वयार्थ :—(नरः[1] ! प्रेत) हे साधनाशील मनुष्यों ! आगे बढ़ो और (जयत) विजय प्राप्त करो । (इन्द्रः[2] वः शर्म[3] यच्छतु) इन्द्र—परमेश्वर तुम्हें सुख दे, आश्रय दे । (वः बाहवः उग्राः सन्तु) तुम्हारी शत्रुओं को विलोडित करने वाली शक्तियाँ उग्र हों (यथा अनाधृष्याः असथ) जिससे कि तुम काम, क्रोध, लोभ आदि द्वारा न दबाए जा सकने योग्य हो जाओ ।

उपर्युक्त मन्त्र में साधनाशील साधक के लिये यह आशीर्वचन है कि "इन्द्रः वः शर्म यच्छतु" "इन्द्र-जगत् सम्राट् परमैश्वर्यवान् तुम्हें सुख दे, शान्ति दे, आश्रय दे, शरण दे, अपनी गोदी मे विश्राम दे, तृप्ति दे ।"

तो क्या सचमुच यदि हमें विद्वानो का, ज्ञानियों का, तपस्वियो का, योगियों का जब यह आशीर्वाद मिल जायेगा तो हम सुख शान्ति और आनन्द को पा लेंगे ?

वैसे योग दर्शन में हम जब महर्षि पतञ्जलि जी के निम्न सूत्र ' सत्य-प्रतिष्ठाया [4]क्रियाफलाश्रयत्वम् ।" तथा उस पर व्यासभाष्य "धार्मिको भूया इति भवति धार्मिकः, स्वर्ग प्राप्नुहीति स्वर्ग प्राप्नोति । अमोघा-

---

१ नरः—'नरो ह वै देवविशः' (जै १.१३) देवप्रजा साधनाशील मनुष्य ।
२ इन्द्रः—इदि परमैश्वर्ये । परमैश्वर्यशाली परमेश्वर ।
३ शर्मेति सुखनाम (निघं०) शाश्वत् सुखम् । शरणम् (निरुक्त) ।
४ योग दर्शन २.३६ । सत्य मे दृढ स्थिति होने पर योगी की वाणी क्रिया फल को आश्रय बनाती है । सत्य में दृढ़ हो जाने पर वह जो कुछ कहता है वह पूर्ण होता है । उस का किसी के प्रति यह कथन कि "तू धार्मिक हो जा !" तो वह धार्मिक हो जाता है । उसका यह कथन कि "तू सुखी हो जा !" तो वह सुखी हो जाता है । इस प्रकार उसकी वाणी अमोघ हो जाती है ।

ऽस्यवाग्भवति ।" का अध्ययन करते हैं तो हमें विश्वास होने लगता है कि महापुरुषों का दिया हुआ यह आशीर्वाद कभी रिक्त नही जा सकता । परन्तु महापुरुषो के इन आशीर्वचनो को सार्थक करने के लिये भी हमारे हृदयों में उनके वचनो के प्रति श्रद्धा होनो चाहिये तथा वैसा बनने और सब कुछ पाने के लिये हमें तप भी करना चाहिए । जैसे पाणिग्रहण संस्कार के समय सभी आयु अनुभव एवं ज्ञान से वृद्ध महानुभाव तथा पुरोहित विद्वान् आचार्य आदि वर-वधू को यह आशीर्वाद देते है—"ओ३म् सौभाग्यमस्तु । ओ३म् शुभं भवतु ।" और 'वधू' को 'सौभाग्यवती भव देवि !' परन्तु इन आशीर्वादों को सार्थक एवं सफल बनाने के लिये भी उस वधू को, उस नारी को तप करना पड़ता है । इसको हम मधुपर्क विधि से भली-भान्ति समझ सकते है—

मधुपर्क में तीन वस्तुएं होती हैं--एक घृत, दूसरी दधि, और तीसरी वस्तु 'मधु' होती है । इस मधुपर्क विधि से भविष्य मे नारी अपने को सौभाग्यवती बनाने की सुन्दर शिक्षा ले सकती है । 'घृत' आयु का प्रतीक है—"आयुर्वैघृतम्" अर्थात् नारी जब भी अपने पति को भोजन आदि पदार्थ परोसे तो उसमे उसे यह ध्यान रखना चाहिये कि घृत या घृत की श्रेणी में आने वाले स्निग्ध पदार्थों का समावेश अवश्य होना चाहिये । क्योकि ऐसा करने से उसकी आयु बढ़ेगी । अब जब उस के पति की आयु बढेगी, तो यह निश्चित है कि उसका सौभाग्य अटल होगा ।

दधि तक्र आदि वह वस्तु है जो रूप को निखारती है, हृदय बुद्धि आदि को निखारती है एवं शरीर को बलिष्ठ बनाती है । अतः दधि या दधि की श्रेणी में आने वाले पदार्थों का समावेश भी नारी को भोजन आदि मे करना चाहिये ।

'मधु'—माता, बहिन और नारी में प्रायः मोह आदि वश यह कमजोरी रहती है कि वे स्नेहवश सदा ध्यान रखती है कि जो कुछ भी वे खाद्य पदार्थ बनाएं वह मधुर-स्वादिष्ट होना चाहिये जिससे उन का पुत्र, भाई वा पति बड़े प्यार से भोजन पकवान आदि का सेवन कर सके । परन्तु मधुपर्क विधि मे मधु से नारी को सावधान किया गया है कि वह जब भी पति को भोजन वा पकवान आदि परोसे तो उसे यह ध्यान रखना चाहिये कि जैसे मधु मीठा है पर उस के गुण अन्य मीठे गुड, शक्कर आदि के समान नही है, बल्कि उन से विशेष है । जहाँ यह मधु मीठा है वहाँ रोगविनाशक भी है, जबकि अन्य मीठे पदार्थ जहाँ स्वादिष्ट है वहाँ रोग को भी उत्पन्न कर सकते है, तभी तो हमारे आयुर्वेद विशेषज्ञ मधु से औषधियो का सेवन करने को प्रेरित करते है । अतः नारी को चाहिये कि वह जो भी भोज्य पदार्थ पति को परोसे, उस मे केवल यह ध्यान न दे कि वह स्वादिष्ट हो, अपितु यह भी ध्यान दे कि वह जहाँ स्वादिष्ट हो वहाँ वह रोग विनाशक भी हो ।

अब जो देवी अपने पति को भोजन परोसते हुए यह ध्यान रखती है कि उसका बनाया हुआ भोजन आयुवर्धक हो, शरीर को स्वस्थ और हृदय बुद्धि आदि को बलिष्ठ करने वाला हो । फिर वह भोजन केवल स्वादिष्ट ही न हो अपितु पति के शरीर को नीरोग बनाने वाला भी हो ।

ऐसी अवस्था में आप स्वयं विचार करें कि जब उस के बनाए हुए भोजन आदि पदार्थों का सेवन करने पर उस का पति शरीर से नीरोग होगा, नीरोग ही नहीं प्रत्युत बलिष्ठ भी होगा और सर्वविध कार्यों को चाहे वे शारीरिक परिश्रम के हों या बौद्धिक हो, उन्हें सोत्साह सम्पन्न कर सकेगा एवं वह दीर्घायुष्य वाला भी होगा, तो उस नारी का सौभाग्य अटल रहेगा कि नहीं ? यदि उस का सौभाग्य अटल होगा तो वह सौभाग्यवती होगी कि नहीं ? और जब वह सौभाग्यवती होगी तो विवाह काल में आयु अनुभव एवं ज्ञान से वृद्ध महानुभावों का तथा पुरोहित विद्वान् आचार्य आदि महापुरुषों का आशीर्वाद सार्थक होगा कि नहीं ? आप कहेंगे, अवश्य सार्थक होगा।

ठीक इसी प्रकार वेद के उपर्युक्त मन्त्र में जो यह आशीर्वाद "इन्द्रः वः शर्म यच्छतु" दिया गया है, वह सौभाग्य से चाहे हमें अपने आचार्यों से मिला हो या ज्ञानियों, तपस्वियों वा योगियों से मिला हो वह भी अवश्य सार्थक होगा। परन्तु उस के सार्थक करने के लिये भी हमे चाहिये कि हम उनके सदुपदेशों पर श्रद्धा रखे और तदनुसार तपःपूर्वक उन पर आचरण करे।

कितना प्रिय है यह आशीर्वाद, कितना हृदयग्राही है यह आशीर्वाद, कि "इन्द्रः वः शर्म यच्छतु" भगवान् तुम्हें सुख दे, तृप्ति दे। पर इस आशीर्वाद के पाने वालों मे इसका पात्र बनने के लिये जहाँ श्रद्धा की अपेक्षा है वहाँ तदनुसार तप की आवश्यकता है।

इन्द्र–जगत् सम्राट्–परमैश्वर्यवान् परमात्मा तुम सब को सुख-शान्ति और आनन्द आदि तो देगा और इस प्रकार उन महापुरुषों के आशीर्वचन भी सफल होंगे, परन्तु यह सब कुछ तब होगा जब तुम सब अपनी तन नगरी के इन्द्र बनोगे, राजा बनोगे अर्थात् अपनी इन्द्रिय रूप प्रजा के स्वामी बनोगे। अनिन्द्र को इन्द्र सुख दे, शान्ति दे, आनन्द दे तो भला कैसे दे ? अतः यह सब पाने के लिये हमे इन्द्र बनना होगा, इन्द्रियों का स्वामी बनना होगा, तभी तो उस इन्द्र के हम कृपापात्र बन सकेंगे।

उपर्युक्त मन्त्र मे हमे सम्बोधित भी यथोचित शब्द से ही किया गया है। (नरः !) हे विषयों मे न रमण करने वाले अर्थात् विषय-वासनाओं से ऊपर उठे हुए साधनाशील मनुष्यो ! (प्रेत) आगे बढ़ो और (जयत) विजय प्राप्त करो। आगे बढ़ने और जीवन में निरन्तर विजय प्राप्त करने के लिये भी यह आवश्यक है कि तुम 'नर' बनो—विषयों से ऊपर उठो–इतने ऊपर उठो कि जगत् सम्राट् इन्द्र के समान तुम भी अपनी तन नगरी के इन्द्र सम्राट् बन जाओ, तभी तो वह इन्द्र तुम्हे सुख देगा, विश्राम देगा। यदि तुम्हारी इस तन नगरी की इन्द्रिय रूप प्रजा काम आदि का शिकार होकर भीतर विप्लव मचा रही हो, तो बताओ वह इन्द्र तुम्हें कैसे सुख दे देगा ? हाँ उस चक्रवर्ती सम्राट् को अपनी सहायता के लिये पुकारो तो वह तुम्हे सहयोग अवश्य देगा जिस से तुम अपनी प्रजा के स्वामी बन सकने मे सफल हो सकोगे।

(नरः ! प्रेत, जयत) हे विषय वासनाओं में ही न रमण करने वाले अर्थात् उन्हीं में ही न डूबे रहने वाले नर नारियो ! सच्चे साधको ! तुम आगे बढ़ो और विजय प्राप्त करो।

कितने उद्बोधक हैं, कितने उत्साहप्रद हैं ये वेद वचन, पर आगे बढ़े कैसे, ऊपर उठे कैसे और कैसे विजय प्राप्त करें ?

यहाँ "प्रेत" में प्र उपसर्ग पूर्वक इण् गतौ' धातु है। गति के तीन अर्थ हैं-ज्ञान, गमन और प्राप्ति हे साधको ! तुम ज्ञान की दृष्टि से आगे बढ़ो, ऊपर उठो। जितना कल जानते थे, उस से आप के ज्ञान में आज कुछ परिवर्धन होना चाहिये। फिर केवल ज्ञान की दृष्टि से नहीं, गमन-आचरण की दृष्टि से भी तुम आगे बढो, प्रगति करो अर्थात् तुम्हारा ज्ञान केवल ज्ञानेन्द्रियों में ही न प्रवाहित होता रहे बल्कि वह कर्मेन्द्रियों में भी प्रवाहित होने लगे ऐसा प्रयत्न करो। इसी मे तुम्हारे ज्ञान की सार्थकता है, नहीं तो 'ज्ञानं भारः क्रियां बिना" केवल ज्ञान जो आचरण का विषय नहीं बन पाता, वह तो व्यर्थ का बोझा मात्र ही होता है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

> शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा
> यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।
> सुचिन्तितं चौषधमातुराणां
> न नाममात्रेण करोत्यरोगम् ॥

कई तो शास्त्रो का अध्ययन करके भी मूर्ख ही रहते है, क्योंकि वे तदनुसार आचरण नहीं करते। वास्तव में जो क्रियावान् है वही विद्वान् है, वही शास्त्रज्ञ है। क्योंकि कितनी भी सुचिन्तित सुन्दर औषधि क्यों न हो, वह भी केवल नाम मात्र के उच्चारण से तो नीरोग नहीं कर देती।

इस प्रकार उपर्युक्त मन्त्रानुसार जहाँ यह कहा गया कि ज्ञान प्राप्ति के लिये आगे बढ़ो, वहां ज्ञान के अनुसार आचरण करने के लिये भी आगे बढ़ने अर्थात् पुरुषार्थ करने का उपदेश दिया गया है ताकि ज्ञान पूर्वक आचरण कर के लक्ष्य की प्राप्ति हो सके।

"जयत" वेद कहता है आप की विजय प्राप्ति में, लक्ष्य प्राप्ति मे जो विघ्न आएं, बाधाएं आएं, उन को दूर करते हुए-उन को पैरो तले रोदते हुए उन पर विजय प्राप्त करते हुए अपने अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति करो।

"नरः ! प्रेत" वेद के उपर्युक्त मन्त्र में साधकों को सम्बोधित करते हुए यह कहा गया है कि हे नरो[1] ! हे साधकों ! तुम अपने जीवन को इतना ऊंचा उठाओ कि तुम अपने जीवन से दूसरों के लिये भी प्रेरणा के स्रोत बन सको, दूसरो का भी नेतृत्व कर सको इसलिये तुम 'प्रेत' आगे बढ़ो। प्रेत' शब्द में 'प्र' उपसर्ग का भी अपना ही महत्त्व है अर्थात् तुम प्रकृष्ट रूप से आगे बढो। तात्पर्य यह है कि यदि तुम ज्ञान की दृष्टि से आगे बढो-ज्ञान प्राप्त करो तो वह भी प्रकृष्ट अर्थात् उत्कृष्ट ही होना चाहिये। उस ज्ञान के अनुसार गमन करो, आचरण करो तो वह भी प्रकृष्ट-उत्कृष्ट रूप मे ही होना चाहिये, तात्पर्य

---

१ "नृ नये नयतीतिना नरौ नरः।"

यह है कि तुम्हारा प्रज्ञान प्रकृष्ट ज्ञान अर्थात् उत्कृष्ट ज्ञान तुम्हें प्रगति-प्रगमन-प्रकृष्ट गमन प्रकृष्ट आचरण में प्रेरित करे जिस से कि तुम अपने प्रकृष्ट-उत्कृष्ट लक्ष्य की प्राप्ति में सफल हो सको।

'जयत' इस प्रकृष्ट उद्देश्य की प्राप्ति में तुम्हारे सम्मुख जितनी भी आपत्तियां आयें, बाधायें आयें उन सब को तुम सदा जीतते चले जाओ। सदा विजय का सेहरा तुम्हारे सिर पर बंधता रहे, सर्वदा विजय का डंका बजता रहे।

हे साधक नरनारियों ! यदि तुम्हारा उद्देश्य पवित्र रहा और उस उत्कृष्ट और पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति के लिये साधन रूप तुम्हारा ज्ञान और आचरण भी उत्कृष्ट रहा, पवित्र रहा तो यह विश्वास रक्खो कि तुम्हारी विजय में किञ्चित्मात्र भी सन्देह नही रहेगा। महात्मा गांधी जी कहा करते थे कि "तुम्हारा उद्देश्य जहाँ उत्तम और पवित्र होना चाहिये वहाँ उसकी प्राप्ति के साधन भी उतने ही उत्तम और पवित्र होने चाहिये।" महर्षि पतञ्जलि जी भी परम पवित्र परमेश्वर की प्राप्ति के लिये अष्टांग योग का प्रतिपादन करते हैं। इसी अष्टाङ्ग योग में वे यम-नियम आदि पर अत्यधिक बल देते हुए कहते है कि "अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि को महाव्रतों के रूप में, सार्वभौम रूप में जब योगी स्वीकार करते है तभी उन्हें अपने पथ में सफलता मिलती है।"

मन्त्र में आगे पुनः आशीर्वाद दिया गया है कि 'इस पावन लक्ष्य की उपलब्धि में "वः बाहवः उग्राः सन्तु यथा अनाधृष्याः असथ" तुम्हारी शत्रुओं की बाधक परिस्थितियों को विलोडित करने वाली बाहुएं-शक्तियां उग्र हों ताकि तुम काम, क्रोध, मोह आदि विघ्न बाधाओं द्वारा न दबाए जा सको अर्थात् उनके द्वारा अपने लक्ष्य से न विचलित किए जा सको।

हे साधनाशील साधको ! जिस प्रकार के काम, क्रोधादि से तुम्हारी शक्तियो का धर्षण न हो सके, उस प्रकार से तुम्हारी शक्तियां उग्र हों। यह सब कैसे और कब होगा ? जब तुम नर बनोगे, विषयों में रमण न करते हुए अर्थात् उन से ऊपर उठने का प्रयास करते हुए जल में कमल की भाति जीवन व्यतीत करते रहोगे और फिर अन्यों के लिये भी अपने जीवन से प्रेरणा का स्रोत बन कर उनका नेतृत्व करते रहोगे। अब इस के लिये यदि तुम प्रकृष्ट रूप से ज्ञानार्जन करोगे; तुम अनुकूल प्रकृष्ट आचरण ओर अपने जीवन का उद्देश्य भी उत्तम ही बनाए रखोगे तो आप अवश्य विजय प्राप्त करोगे। इस प्रकार वेद का यह आशीर्वाद सार्थक होगा।

"इन्द्रः वः शर्म यच्छतु" जगत् सम्राट् प्रभु तुम्हें सुख दे, सुख के सर्वविध साधन दे, शान्ति दे, आनन्द दे।

वैसे लौकिक सुख वा सुख के साधन तो ये माता पिता और राजा आदि भी तुम्हें दे सकते हैं पर यह भी उसी परमेश्वर की कृपा से, पर यह स्मरण रखना कि परमैश्वर्य-परम सुख-शाश्वत सुख, शान्ति एवं आनन्द तो केवल वही भगवान् ही तुम्हें दे सकता है। अतः जिसकी शरण में जाने से दोनों ऐश्वर्यों की प्राप्ति होती है उसी इन्द्र की शरण में जाओ।

—◆◆—

# वैदिक शिक्षा राष्ट्रीय कार्यशाला
## ( ८ सितम्बर से १० सितम्बर १९८२ )
### उद्घाटन भाषण
## श्रीमती माधुरी शाह, अध्यक्ष, वि. वि. अनुदान आयोग

मान्यवर प्रतिष्ठित महोदय, कुलाधिपति महोदय, कुलपति महोदय उपस्थित विद्वज्जन,

आपने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में आयोजित "वैदिक शिक्षा राष्ट्रीय कार्यशाला" के उद्घाटन हेतु मुझे आमन्त्रित किया-इस सम्मान के लिये मैं आपकी आभारी हूँ।

भारत के नवजागरण के आन्दोलन में ऋषि दयानन्द का स्थान अद्वितीय है। उनसे प्रेरणा लेकर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने आज से ८० वर्ष पहले एक नई आशा और नई स्फूर्ति से गंगा नदी के तट पर गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की थी। उस समय की शिक्षा पद्धति से वे सन्तुष्ट न थे। एक ओर विदेशी भाषा के माध्यम से पढ़े हुए युवक ब्रिटिश शासन के सचिवालयों में नौकरी की खोज करते थे, दूसरी ओर प्राचीन शिक्षा स्थलों पर चल रही पाठशालाओं में अध्ययन करते हुए विद्यार्थी आधुनिक ज्ञान विज्ञान से सर्वथा विमुख थे। अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश में ऋषि दयानन्द ने समग्र शिक्षा का जो मन्त्र प्रस्तुत किया था उसको मूर्त रूप देने हेतु महात्मा हंसराज और उनके सहयोगियों ने १८८६ में डी० ए० वी० कॉलेज लाहौर की स्थापना की थी, किन्तु स्वामी श्रद्धानन्द और प० गुरुदत्त डी० ए० वी० कॉलेज की उपलब्धियों से सन्तुष्ट नहीं थे। अतः उन्होंने गुरुकुल की स्थापना का बोझा उठाया, जिसमें कि भारतीय और विदेशी दोनों शिक्षा पद्धतियों का समन्वय हो और दोनों के गुण ग्रहण करते हुए दोनों के दोषों से मुक्ति हो। गुरुकुल की प्रारम्भिक योजना में वेद-वेदाग और संस्कृत साहित्य की शिक्षा के साथ-साथ आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा को भी यथोचित स्थान दिया गया और शिक्षा का माध्यम राष्ट्रीय भाषा हिन्दी को रखा गया। गुरुकुल में गुरु-शिष्य परम्परा के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य, तप, स्वाध्याय, स्वावलम्बन और स्वदेशी का विशेष महत्त्व था।

आज जब चहुँ ओर से हमें शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं ने घेर रखा है, वैदिक शिक्षा के आधारभूत मूल्यों पर गहन विचार की आवश्यकता है। आज देश में १२० से अधिक विश्वविद्यालय हैं ४,१०० कॉलेज हैं ४०००० माध्यमिक पाठशालायें हैं और छः लाख प्राथमिक पाठशालायें है, उच्च शिक्षा के संस्थानों में लगभग दो लाख अध्यापक काम कर रहें है। इक्कीस लाख विद्यार्थी उनमें अध्ययन कर रहें हैं। अढ़ाई लाख विद्यार्थी स्नातकोत्तर संस्थानो में अध्ययन कर रहे है। वैज्ञानिक जनशक्ति की संख्या के अनुसार हमारी गणना विश्व के राष्ट्रों मे तीसरे स्थान पर है। हमारे उच्चतम वैज्ञानिक विश्व के किसी भी राष्ट्र के वैज्ञानिकों के समकक्ष खड़े हो सकते है। लेकिन फिर भी देखा जाए तो वर्तमान शिक्षा प्रणाली

हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं, सामाजिक लक्ष्यों और आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सफल नहीं हो पा रही। हमारे स्नातक-स्तर के कोर्स जो कि पुरानी पद्धति पर आधारित है देश की आधुनिक आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पा रहे।

यह ठीक है कि विश्वविद्यालय का मुख्य उद्देश्य विद्या का प्रसार और नए अनुसंधान करके जगत् के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करना है। इस कार्य हेतु यह आवश्यक हो जाता है कि विश्वविद्यालयों का वातावरण शुद्ध, शान्त और तपोमय हो, जिससे कि विद्योपार्जन और ज्ञान-विज्ञान के अनुसंधान में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो। लेकिन यदि हम यही तक ही विश्वविद्यालय के लक्ष्य को सीमित कर दें तो जन साधारण के साथ यह एक बहुत भारी अन्याय होगा। आर्यसमाज का नवां नियम है, प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये। इस लक्ष्य की पूर्ति तभी हो सकती है यदि शिक्षा संस्थान अपने अड़ोस-पड़ोस मे जाकर निर्बल वर्ग की और ग्रामवासीयों की जरुरतों, इच्छाओं, अभिलाषाओं, कमजोरियों और शक्तियों का अध्ययन करें और उनके साथ मिल-जुल कर अपनी शिक्षा का लाभ उनको देते हुए उनके स्तर को ऊंचा करने की कोशिश करे। इससे एक ओर तो अध्यापकों और विद्यार्थियों में समाज सेवा की भावना उजागर होगी, दूसरी ओर यह भी जानकारी प्राप्त हो सकेगी कि हमारी शिक्षा में क्या त्रुटियां हैं और हमारे पाठ्यक्रम को क्या मोड़ देना अभीष्ट है?

इस सन्दर्भ में मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपके विश्वविद्यालय ने अपने मातृग्राम कांगड़ी को सम्भाला है और बिजनौर के जिला अधिकारियों की सहायता से वहा ग्राम विकास का एक अभूतपूर्व कार्यक्रम शुरू किया गया है। मुझे बताया गया है कि इस वर्ष वहाँ ३०,००० शहतूत के पौधे और २,००० सुबबूल के पेड लगाने का कार्यक्रम है। इसके अतिरिक्त वहाँ एक बायोगैस प्लान्ट और पवनचक्की लगाने की योजना भी है जिससे कि घरो में बिजली और पीने का पानी उपलब्ध होगा। कलैक्टर बिजनौर ने निर्बल-आवास, दुकानो के निर्माण, सडकों को पक्का करने और काम धन्धों को शुरू करने के लिये यथेष्ठ अनुदान और ऋण उपलब्ध कराने का आश्वासन भी दिया है। आशा है आपके सहयोग से ग्राम-वासी इन योजनाओं से पूरा लाभ उठायेंगे।

इस बात को हमें स्पष्ट तौर पर समझ लेना चाहिये कि जो शिक्षा नैतिक मूल्यों के विकास की अवहेलना करती है उसे शिक्षा की संज्ञा नहीं दी जा सकती। नैतिक मूल्यों का विकास और निर्माण में उच्चतम संस्कारों की प्रतिष्ठा किसी भी शिक्षा प्रणाली का आधार स्तम्भ है यही गुरु शिष्य परम्परा का मुख्य ध्येय है। गुरु शिष्य को निकटस्थ करके उसकी रक्षा और शिक्षा-दीक्षा करता है, उसकी समस्याओ का निदान करता है "उसके समक्ष आदर्श जीवन के लक्ष्य उपस्थित करता है, जिससे कि ब्रह्मचारी सन्मार्ग में प्रेरित हो और पापाचरण से बचे। जो धर्मयुक्त कार्य हों उनको ग्रहण करे। विद्वानों का सत्कार करे, माता, पिता, आचार्य और अतिथि की सेवा करे। आज देश को ऐसे ही गुरुकुलो की आवश्यकता है, जहाँ चरित्रवान् और धर्मनिष्ठ गुरु ब्रह्मचारियों के सम्मुख आदर्श जीवन का उदाहरण उपस्थित करने मे सदा प्रयत्नशील हों। हमें ऐसे गुरुकुलों की आवश्यकता है जहां गुरुजन और ब्रह्मचारी सत्य के ग्रहण करने

और असत्य के त्याग में सर्वदा उद्यत हों, जहां सब काम धर्म के अनुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके किए जायें, जहां का वातावरण परोपकार की भावना से ओत-प्रोत हो, जहाँ अविद्या के नाश और विद्या की वृद्धि हेतु अहर्निश यज्ञ रचे जाएं।

सभी ओर से आवाज उठ रही है कि आज की शिक्षा-पद्धति से शिक्षित बेकारों की संख्या में वृद्धि हो रही है। इसी हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने यह सुझाव प्रस्तुत किया है कि बहुत सी.सरकारी नौकरियों के लिये स्नातक की उपाधि की शर्त हटा दी जाए। जिस कार्य के लिए जिस गुण की आवश्यकता हो उसी गुण की परख करके नौकरीदाता प्रार्थी को नौकरी प्रदान करें और यह गुण विश्वविद्यालय प्रणाली से बाहर भी प्राप्त किये जा सकते हैं। इसी हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने महाविद्यालयों में प्रवेश के लिये निम्न छः बिन्दु की नीति निर्धारित की है।

(क) किसी भी विभाग अथवा महाविद्यालय में प्रवेश उस विभाग अथवा महाविद्यालय की क्षमता को दृष्टिगत रखते हुए योग्यता के आधार पर देना चाहिये।

(ख) नये विश्वविद्यालय, महाविद्यालय स्थानीय शैक्षणिक आवश्यकताओं के सर्वेक्षण के पश्चात् केवल पिछड़े इलाकों में ही खोले जाएं।

(ग) माध्यमिक स्तर पर अर्थंकरी विद्या का प्रबन्ध किया जाये।

(घ) स्नातक शिक्षा के पाठ्यक्रम में समुचित संशोधन किया जाए। जिस से कि स्नातकों को समाज की अर्थव्यवस्था में उचित स्थान प्राप्त करने में कठिनाई न हो।

(ङ) पत्राचार के द्वारा शिक्षा-परीक्षा का प्रबन्ध विस्तृत किया जाए।

(च) समाज के निर्बल वर्गों के लिये शिक्षा की सुविधाएं बढ़ाई जाएं।

आज देश की जनसंख्या, स्वास्थ्य, पर्यावरण, जन-संचार तथा अन्य कितने ही क्षेत्रों में मध्य स्तर के कारीगरों, शिल्पियों की आवश्यकता है, यदि परम्परागत पाठ्यक्रमों में थोड़ा बहुत अदल-बदल करके इन सामाजिक जरुरतों को पूरा करने के लिये कोई विश्वविद्यालय पहल करेगा तो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग उसकी सहायता के लिये तत्पर होगा।

जहां ज्ञान वृद्धि और अनुसन्धान का सम्बन्ध है वहां भी हम चाहेंगे कि ऐसे विषयों पर अनुसंधान हो जिनसे स्थानीय, प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय समस्याओं के निदान ढूंढने में सहायता मिले।

गुरुकुल कांगड़ी को विश्वविद्यालय स्तर की मान्यता प्राप्त है। इसका अर्थ यह है कि आपने विशेष क्षेत्र में अपना एक परिपक्व स्थान प्राप्त कर लिया है और उस क्षेत्र मे आपका स्तर अन्य संस्थाओं से ऊंचा है। भले ही इस विश्वविद्यालय में सामान्य विश्वविद्यालयों की तरह विभिन्न विषयों के अध्ययन अध्यापन का प्रबन्ध न हो परन्तु अपने चुने हुए क्षेत्र में इस विश्वविद्यालय की उपलब्धियां और प्रतिष्ठा

अद्वितीय होनी चाहिये। वेद सत्य विद्या का पुस्तक है। वेद को पढ़ना पढ़ाना, सुनना-सुनना सब आर्यों का परम धर्म है, अतः वेद में गहन अनुसंधान करना, वेद का अध्यन अध्यापन और विश्व की समस्त भाषाओं में इसका प्रचार करना आपका मुख्य कर्तव्य है। यह प्रश्न आपको स्वयं से पूछना हेगा और इसका उत्तर देना होगा कि आप इस दिशा में कितने अग्रसर हैं। इस प्रश्न का उत्तर आज राष्ट्र आपसे मांग रहा है। आपके पास एक बहुत कीमती निधि है। आप उसका कितना प्रयोग कर रहे हैं? आज देश को मार्गदर्शन की आवश्यकता है। वैदिक ज्योति के आप प्रकाशपुञ्ज हैं। आशा है, गुरुकुल विश्वविद्यालय से ऐसी ज्योति प्रस्फुटित होगी जो न केवल देश का अपितु विश्व का मार्ग प्रशस्त करेगी। इस आशा और आशीर्वाद के साथ के इस राष्ट्रीय महत्त्व की वैदिक शिक्षा कार्यशाला का उद्घाटन करती हूँ।

धन्यवाद!

# गुरुकुल समाचार

१८ दिसम्बर १९८२ को गौतम नगर दिल्ली मे स्थित दयानन्द वेद-विद्यालय मे आचार्य एव उपकुलपति श्री रामप्रसाद जी की अध्यक्षता में एक वेद-सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन मे अनेक प्रतिष्ठित विद्वानो ने भाग लिया। अन्त मे आचार्य जी ने वेदो पर अपना सारगर्भित भाषण दिया तथा इस बात पर बल दिया कि वेद का पढना-पढाना प्रत्येक आर्य का प्रथम धर्म है।

२१ दिसम्बर १९८२ को पुण्यभूमि (कागडी ग्राम मे आयोजित एन० एस० एस० शिविर का उदघाटन, जिलाधीश बिजनौर श्री ओ० पी० आय ने किया। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी मुख्य अतिथि थे। इस समारोह मे विश्वविद्यालय के शिक्षक, कर्मचारी तथा वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर की अनेक पुरुष व स्त्रिया भी उपस्थित थी। इस अवसर पर डा० जबर सिंह संगर, कुलसचिव डा० विजयशङ्कर जी ने भी भाषण दिया। इस दस दिवसीय शिविर मे ४७ छात्रो तथा ५ स्थानीय युवको ने भाग लिया तथा निम्न कार्य किये कागडी ग्राम मे विद्यालय के निकट के कुए की सफाई तथा पानी निकास के लिए नालियो का निर्माण, वृक्षारोपण के लिए गड्ढे खोदना खडजो का निर्माण एव ग्राम का सामाजिक-आर्थिक सर्वेक्षण आदि।

इस शिविर के प्रथम दिन सी० बी०आर०आई० के निदेशक श्री वर्मा जी ने ग्रामवासियो के लिए सस्ते झोपडीनुमा मकान बनाने की तकनीक पर भी प्रकाश तथा जिसे काफी सराहा गया। यह पूर्ण शिविर श्री वीरेन्द्र अरोडा, कोडिनेटर डॉ० बी० डी० जोशी एवं डॉ० त्रिलोकचन्द्र त्यागी प्रोग्राम आफिसर के नेतृत्व मे सम्पन्न हुआ।

२३ दिसम्बर १९८२ को आचार्य एवं उपकुलपति श्री रामप्रसाद जी वेदालङ्कार ने श्री रणवीर जी, सम्पादक मिलाप दिल्ली की मृत्यु पर शान्ति यज्ञ किया। तत्पश्चात् श्री आचार्य जी ने वेदोपदेश भी दिया।

माननीय कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा जी के नेतृत्व मे गुरुकुल कागडी परिसर एक नयी करवट ले रहा है। उन्ही की प्ररणा से २३ दिसम्बर १९८२ को गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय के परिसर मे श्रद्धानन्द-बलिदान दिवस के अवसर पर श्रद्धानन्द द्वार से एक जूलुस निकाला गया। यह जुलूस गुरुकुल परिसर मे स्वामी श्रद्धानन्द जी के नारे लगाता हुआ गुरुकुल कार्यालय के समक्ष आया। यहा पर कुल-पताका फहराने के पश्चात् जुलूस वेद-मन्दिर मे एक सभा मे परिवर्तित हो गया। इस सभा मे सर्व श्री सरदारी लाल जी वर्मा, आचार्य एव उपकुलपति श्री रामप्रसाद जी, डॉ० जबरसिंह संगर, कुलसचिव, डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा, डॉ० विजयशकर जी तथा डॉ० विष्णुदत्त जी राकेश आदि ने स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। अन्त मे कुलाधिपति जी ने स्वामी जी को श्रद्धाञ्जलि देते हुए गुरुकुलीय शिक्षा-पद्धति एव विचारधारा को अपनाने पर बल दिया। सभा का सयोजन श्री

जितेन्द्र जी, सहायक मुख्याधिष्ठाता जी ने किया। इसी अवसर पर गुरुकुल परिसर में एक द्वि-दिवसीय हाकी-टूर्नामेन्ट का भी आयोजन किया गया। इस टूर्नामेन्ट में ऋषिकेश, बी० एच० ई० एल०, रुडकी, मुजफ्फरनगर आदि की टीमों ने भाग लिया।

दिनांक २५ दिसम्बर ८२ को अन्तिम मैच गुरुकुल व बी० एच० ई० एल० के मध्य हुआ, जिसमें गुरुकुल की टीम को विजय प्राप्त हुई। इस अवसर पर आचार्य एवं उपकुलपति जी ने पुरस्कार-वितरण किया तथा टूर्नामेंट के खिलाड़ियों को और अच्छा प्रदर्शन करने के लिये प्रेरित किया। इस टूर्नामेंट का आयोजन श्री जितेन्द्र जी एवं मुख्याध्यापक डॉ० दीनानाथ के नेतृत्व में किया गया।

२६ दिसम्बर ८२ को आचार्य एवं उपकुलपति, श्री ओमप्रकाश मिश्र क्रीड़ाध्यक्ष जी ने डॉ० काश्मीर सिंह तथा करतार सिंह के नेतृत्व में जम्बू में होने वाले अन्तरविश्वविद्यालय हाकी-टूर्नामेंट मे भाग लेने के लिये गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय की टीम को शुभकामनाओ के साथ विदा किया।

२९ दिसम्बर ८२ को एन० एस० एस० शिविर का समापन समारोह सम्पन्न हुआ। इस समारोह के मुख्य अतिथि श्री घनश्याम पन्त, स्थानीय न्यायाधीश थे। इस अवसर पर उपकुलपति श्री रामप्रसाद, डॉ० जबरसिंह सेंगर, कुलसचिव, डॉ० विजयशंकर आदि उपस्थित थे। यह समस्त कार्य श्री वीरेन्द्र अरोड़ा, कोर्डिनेटर के नेतृत्व में सम्पन्न हुआ। इस शिविर के प्रोग्राम आफिसर डॉ० बी० डी० जोशी तथा डॉ० त्रिलोकचन्द्र त्यागी थे।